JULY, 2001

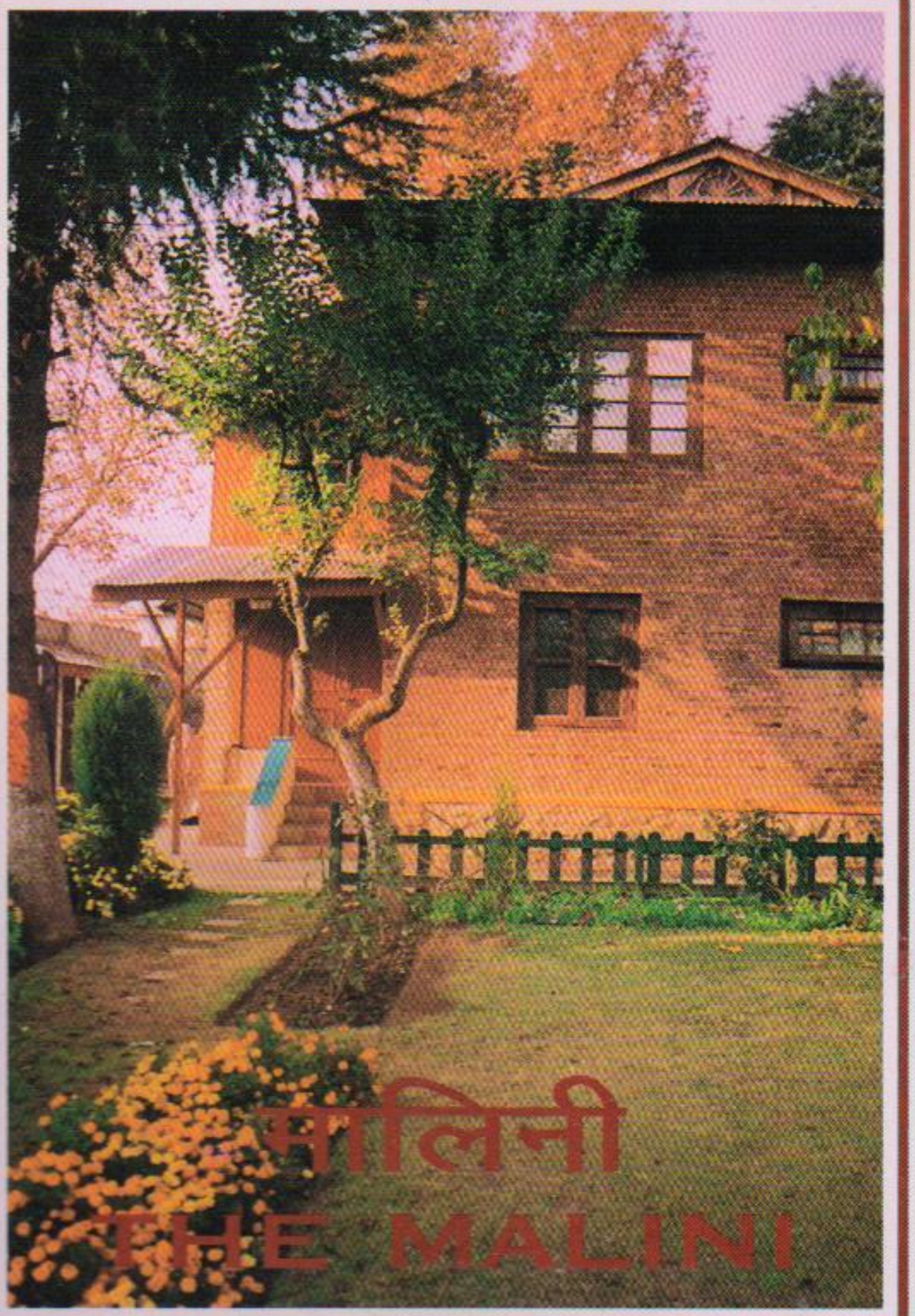

ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Vol. VII NO. II ISSUE XXV
JULY, 2001

मालिनी

THE MALINI

Abhinavagupta about Malinī

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।
भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी।।

Śrī Mālinī Devī is ever victorious. In union with her all the treatises of non-dualistic order achieve the nature of divine potency.

T.A.A. XXXVII

ISHWAR ASHRAM TRUST
ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Board of Trustees :
Sri Inderkrishan Raina
(Secretary/Trustee)
Sri Samvit Prakash Dhar
Sri Brijnath Kaul
Sri Mohankrishan Wattal

Editorial Board :
Sushri Prabhadevi
Prof. Nilakanth Gurtoo
Prof. Makhanlal Kukiloo
Sri Somnath Saproo

Sri Brijmohan
(I.A.S. Retd.) Co-ordination

Publishers :
Ishwar Ashram Trust
Ishber (Nishat), Srinagar
Kashmir.

Administrative Office :
Ishwar Ashram Bhawan
2-Mohinder Nagar
Canal Road
Jammu Tawi - 180 002.
Tel. : 553179, 555755

Branch Office :
R-5/D Pocket, Sarita Vihar
New Delhi - 110 044
Tel. : 6958308
Telefax: 6943307

July, 2001
Price : Rs. 25.00,
: Rs. 33.00 (with postage charges)

© Ishwar Ashram Trust

Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust
by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2. Tel 328-1568, 327-1568

ॐ नमः परमसंविद् चिद्वपुषे

विषय सूची : Contents

	सम्पादक की लेखनी से		4
1.	Śiva Sūtras	*Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāja*	7
2.	Meditation	*Shin Shiva Svayambhu*	13
3.	Kinds of Speech	*Dr. B. N. Pandit*	16
4.	A Re–appraisal of Lal Ded	*Prof. A. N. Dhar*	21
5.	विज्ञान भैरव–समीक्षात्मक अध्ययन	*स्वामी लक्ष्मण जू महाराज*	27
6.	श्री तन्त्रालोकविवेके जयाद्या रुद्राः	*प्रो. मखनलाल कुकिलू*	32
7.	ब्रह्म कमल–चित्रात्मक विवरण	*(श्री सी. एल. तिकू के सौजन्य से)*	36
8.	शैवदर्शन के वातायन से	*प्रो. नीलकंठ गुर्टू*	37
9.	तुलसी–प्रकृति की अपूर्व देन	*प्रो. मखनलाल कुकिलू*	39
10.	From Ashram Desk	*Administrative office*	42
		(I) Delhi Kendra	
		(2) Ishwar Ashram Bhawan Jammu	

संपादक की लेखनी से

मालिनी का प्रस्तुत अंक पाठकों, साधकों तथा सद्गुरु महाराज के प्रिय शिष्यों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार प्रसन्नता हो रही है। इस तथ्य से भी हमें अतीव सन्तोष हो रहा है कि मालिनी के प्रशंसकों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है जिससे इसके प्रचार और प्रसार के कार्य को बढ़ावा मिल रहा है। श्री गुरुपूर्णिमा के सुअवसर पर इस अंक का प्रकाशन सद्गुरु महाराज के प्रति हमारी अटूट आस्था और उनके अप्रतिम गौरव का सूचक है। श्री सद्गुरुदेव का यही एकमात्र काम रहा है कि उनसे जिन्होंने जो चाहा उन्हें वह प्राप्त हुआ, जिन्होंने भुक्ति चाही उन्हें भुक्ति मिली और जिन्होंने धर्म मांगा उन्हें धर्म मिला। इस प्रकार श्री सद्गुरुदेव वह कल्पवृक्ष हैं जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चारों पुरुषार्थों के दाता हैं। इनके सहजस्वरूप का वाणी द्वारा शब्दचित्रण तथा मन द्वारा मनन दुष्कर कृत्य है क्योंकि इनका श्रीविग्रह दिव्य तत्त्वों से निर्मित है जो एक ही समय में अनन्त भिन्न-भिन्न शरीरों को धारण कर लेते हैं। भागीरथी की धारा की भांति सतत् रूप से प्रवहमान इनका नाम जप अनिर्वचनीय लोकों की लीला का सुक्षेत्र है। सद्गुरुदेव ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज का प्राकट्य बड़ा विलक्षण और अनुपमेय रहा है। इनकी योग सम्पदायें वर्णनातीत हैं। उनके परम कृपामय चरित्र अतुलनीय हैं। सविकल्प समाधि में स्थित रहकर जगदानन्द में नितान्त लिप्त रहना, तथा निर्विकल्प समाधिस्थ होके ब्रह्मानन्द में मग्न रहने से बाह्य जगत से नितान्त निर्लिप्त रहना इनके व्यक्तित्व की अपूर्व विशेषता थी। इस प्रकार महाव्याप्ति की संवेदना का पावनविग्रह सद्गुरु देव शिवरूप ही होता है।

कुलार्णवतंत्र में कहा है कि –

यो गुरुः सशिवः प्रोक्तो यः शिवः सगुरुः स्मृतः।
उभयोरन्तरं नास्ति गुरोरपि शिवस्य च॥

अर्थात्= जो गुरु है वही शिव है, जो शिव है वही गुरु।
श्रीगुरु और शिव इन दोनों में कोई अन्तर दीखत नाही॥

श्री तन्त्रालोक में भी कहा है कि–

शिवोऽयं शिव एवास्मीत्येवमाचार्यशिष्ययोः।
हेतुतद्वत्ततया दाढर्चाभिमानो मोचको ह्यणोः ॥

अर्थात् मेरा आराध्य गुरु शिव है, मैं भी स्वयं शिव हूँ। इस तरह गुरु और शिष्य में हेतु हेतु मत् भाव के आधार पर अभिमान का दाढर्च (दृढ़ता) जीव या पशु को पशुता के

पाश से छुटकारा दिलाने में सक्षम होता है॥

ऐसे शिवरूप श्रीगुरु से दीक्षित शिष्य दीक्षकाल में जिस तत्त्व में योजित होता है वह उस तत्त्व से निवर्तित नहीं होता है। श्री मालिनीविजयोत्तरतन्त्र में भी कहा है–

यो यत्र योजितस्तत्त्वे स तस्मात् न निवार्यते।

अतः यह बात निश्चित है कि शैवीगुरु द्वारा दी गई दीक्षा ही भोग और मोक्ष का उपाय है। यह अतीत, अनागत और आरब्ध इन तीनों प्रकार के पाशों को काट कर सद्यः निर्वाणदायिनी होती है। नित्य नैमित्तिक अनुष्ठान की कोई आवश्यकता नहीं रहती है। आज के महापर्व पर हमारी सद्गुरु महाराज से यही एकमात्र प्रार्थना है कि वह हमारे कार्ममल को काटकर हमारे मुक्ति पथ को प्रशस्त करें और "मीरा के गिरिधर गोपाल के समान दूसरो न कोई" के आधार पर अनन्यभावना में हमें रंग लें जिससे हमारा 'स्व' भी सद्गुरु में ही हिमानी की तरह विलीन होवे। इसी ओर संकेत करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने भी श्रीगीता में कहा है कि–

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमो वहाम्यहम्॥

आचार्य वसुगुप्त ने भी शिवसूत्र में कहा है कि "गुरुरुपायः"।

जय गुरुदेव।

श्रीसद्गुरुमहाराज की जन्मजयन्ती से लेकर आजतक अर्थात् इन विगत तीन महीनों में हमारे दिल्ली केन्द्र के ईश्वराश्रम भवन का निर्माण कार्य कई असामान्य कारणों से रुका पड़ा है। हमें आशा है कि आनेवाले महीनों में भक्तों के आशातीत प्रयास के फलस्वरूप भवन का रुका पड़ा कार्य पुनः आरम्भ होगा और हमारा भव्य सपना साकार हो उठेगा। हमारे दिल्ली केन्द्र के अध्यक्ष श्री ए० के० गंजू जी धन्यवाद के पात्र हैं। अनेक सामाजिक व धार्मिक संस्थाओं के पुनरुत्थान के कार्यक्रमों में अतीव व्यस्त रहने पर भी आश्रम सम्बन्धी सभी कार्यों को प्राथमिकता देकर अपनी परिपक्व निष्ठा का परिचय देते हैं।

धार्मिकसंगीतप्रेमी भक्त जनता यह पढ़कर प्रसन्न होगी कि ईश्वर आश्रम ट्रस्ट कश्मीर के तत्त्वावधान में भजनसन्ध्या का कार्यक्रम पहली अक्टूबर सोमवार सन् २००१ को दिल्ली के एशियाड विलेज स्थित "सीरी फोर्ट सभागार" में हो रहा है। भजन सम्राट् श्री अनूप जलोटा अपनी मोहक वाणी में सभासदों का मनोरंजन करके कार्यक्रम को आकर्षक बनायेंगे। इस कार्यक्रम का समायोजन श्रीमती अंजना दर (सुपुत्रवधू श्रीयुत

एस० पी० दर, ट्रस्टी) की देखरेख में होगा। श्रीमती अंजना जी का यह प्रयास स्तुत्य है और इनकी सद्गुरु महाराज के प्रति सुदृढ़ भक्ति का परिचायक है। सभी भक्तजनों तथा ईश्वरस्वरूप के प्रेमियों से सविनय निवेदन है कि वे ट्रस्ट के इस प्रकार के प्रथम प्रयास को संपूर्णरूप से सफल बनालें और इसके समायोजन की गरिमा में किसी प्रकार की न्यूनता न लाने दें।

ईश्वरस्वरूप महाराज के भक्तजनों, प्रेमियों व शिष्य वर्ग को सूचित किया जा रहा है कि सद्गुरु महाराज की निर्वाण जयन्ती, सरिता विहार, दिल्ली स्थित निर्माणाधीन ईश्वराश्रम भवन में धूमधाम से ६ सितम्बर आश्विन कृष्ण पक्ष चतुर्थी को मनायी जा रही है। प्रधान ईश्वर आश्रम, निशात, श्रीनगर में और ईश्वर आश्रम भवन, महेन्द्र नगर, जम्मू में भी निर्वाण जयन्ती के दिन भव्ययज्ञ का अनुष्ठान होने वाला है। आशा है कि सभी भक्तजन प्रेमी व शिष्य आदि निर्वाणजयन्ती समारोह में सम्मिलित होके उत्सव की शोभा बढ़ायेंगे।

हमें यह सूचना देने में खेद हो रहा है कि पहली जून २००१ से डाक प्रभार में आशातीत वृद्धि के कारण डाक द्वारा 'मालिनी' भेजने का व्यय दुगुना हो गया। अतः प्रस्तुत अंक से मालिनी का वार्षिक शुल्क रु० १३० होगा। हमें आशा है कि सभी पाठक हमारी विवशता को समझकर मूल्य-वृद्धि के हमारे इस प्रयास से असन्तुष्ट नहीं होंगे। असुविधा के लिए क्षमाप्रार्थी।

ईश्वराश्रम परिवार तथा धार्मिक जनता को गुरुपूर्णिमा की बधाईयां।

जय गुरुदेव ।

प्रो० मखन लाल कुकिलू

गुरुपूर्णिमा।
५ जुलाई सन् २००१

श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज

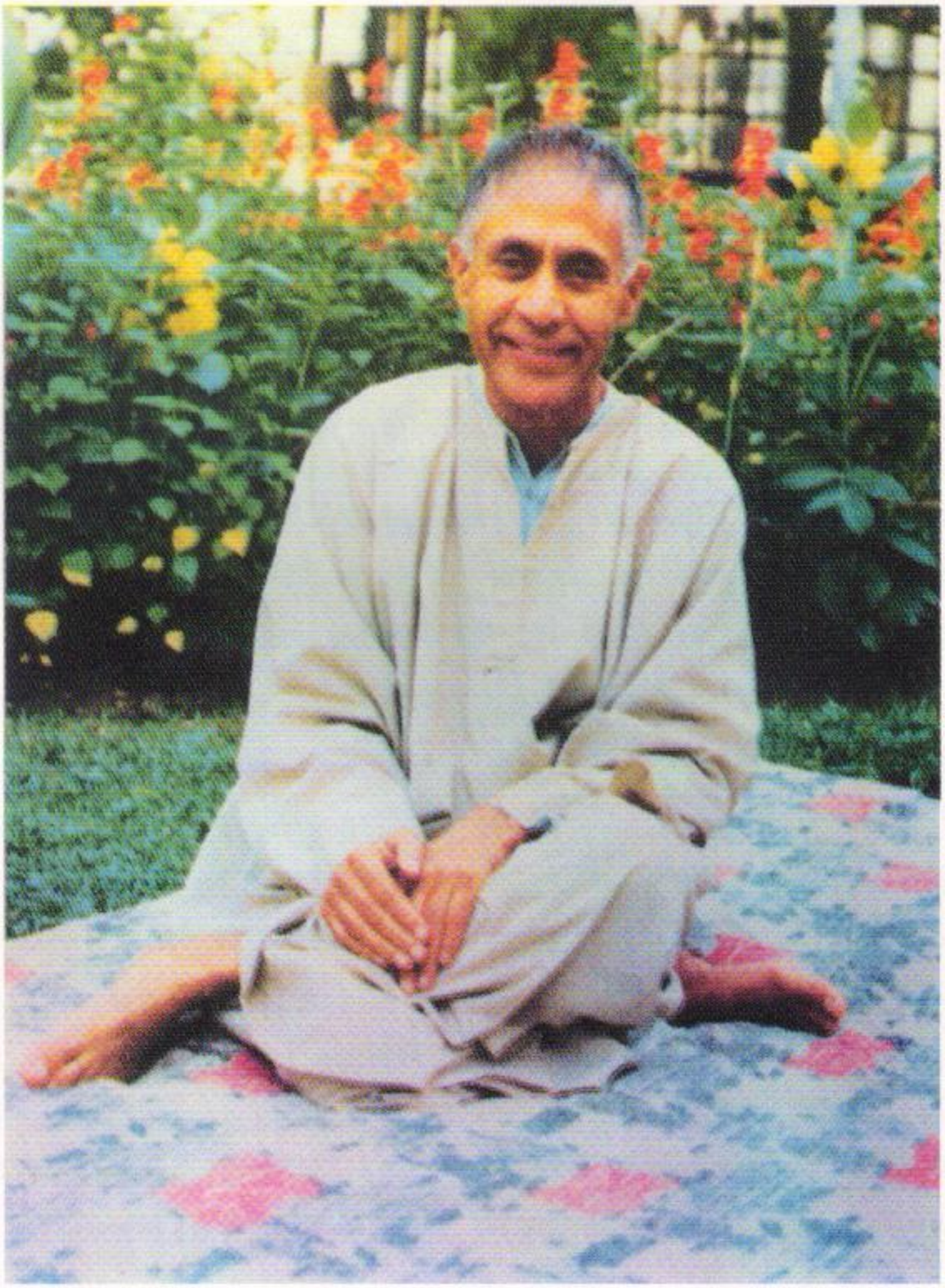

आविर्भावदिवस
9-5-1907

महासमाधिदिवस
27-9-1991

ŚIVA SŪTRAS

with Vimarśinī Sanskrit Commentary of Śrī Kṣemarāja

Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāja

(continued from last issue)

यदातु आगतामपि मितसिद्धिं खिलीकृत्य परामेव स्थितिमवष्टभ्नाति योगी ततः–

यदातु–when, आगतामपि–even favoured by these, मितसिद्धिं–limited yogic powers, खिलीकृत्य–having rejected, परामेव स्थितिं–the supreme divine state, अवष्टभ्नाति–holds a, योगी–yogi ततः–then

विद्यासमुत्थाने स्वाभाविके खेचरी शिवावस्था।। ५।।

Vidyāsamutthāne svābhāvike khecarī śivāvasthā // 5//

As the rise of natural (pure supreme) knowledge, the state of Śiva, residing in the ether of God-consciousness is attained.

प्राक् निर्दिष्ठ सतत्त्वाया विद्यायाः स्वाभाविके समुत्थाने, परमेश इच्छामात्र घटिते मितसिद्धि न्यग्भाविने सहजे समुन्मज्जने; खे=बोधगगने चरति इति खेचरी मुद्रा अभिव्यज्यते। कीदृशी खेचरी, शिवस्य=चिन्नाथस्य अवस्थातुः संबन्धिनी अवस्था=स्वानन्दोच्छलतारूपा।

प्राक् – in previous sūtras,, निर्दिष्ठ सतत्त्वाया विद्यायाः– this pure knowledge which has already been explained, स्वाभाविके समुत्थाने–When that knowledge comes into existence without any effort, परमेशइच्छामात्रघटिते–by the supreme will of Lord Śiva, मितिसिद्धिन्यग्भाविने–these limited powers are subsided, सहजे समुन्मज्जने–and that real state of Lord Śiva comes into being, (then what happens) खे बोधगगने चरति इति खेचरी मुद्रा अभिव्यज्यते–he roams and flies in the eather of knowledge or आकाश of supreme knowledge, that comes into existence to him, कीदृशी खेचरी?–what type of, खेचरी? शिवस्य चिन्नाथस्य अवस्थाश्तुसबन्धनी अवस्था स्वानन्दोच्छलतारूपा–this is the state of Lord Śiva who is, चिन्नाथः–the supreme embodiment of consciousness which is one with the, साधक or साधक becomes one with Śiva, this is the way of rise of one's own blessing state आनन्दः। नतु–the following way as explained in the following verse is not खेचरी–

बद्ध्वा पद्मासनं योगी नाभौ अक्षेश्वरं न्यसेत्।
दण्डाकारं तु तावत् तत् नयेत् यावत् क खत्रयम्।।
निगृह्य तत्र तत् तूर्णं प्रेरयेत् खत्रयेण तु।
एतां बद्ध्वा महायोगी खे गतिं प्रतिपद्यते।।
इत्येवं संस्थान विशेष अनुसरण रूपाः; अपितु
पराम्·····।
गतिमेत्यर्थ भावेन कुलमार्गेण नित्यशः।
चरते सर्वजन्तूनां खेचरी नाम सा स्मृता।।
इति - श्रीतन्त्रसद्भावनिरूपित परसंवित्ति स्वरूपा।

बद्ध्वा पद्मासनं योगी–let yogi be seated in, पद्मासन, नाभौ अक्षेश्वरं न्यसेत्–and put his mind on the centre of navel, (अक्षेश्वरं mind is the master of all organs), दण्डाकारं तु तावत्–he must sit erect not bend his body, तत् नयेत्–lead his mind यावत् ख त्रयम्– to that point where three आकाश namely śakti, vyāpinī, and samanā are in क– the head, निगृह्य–by holding them, तत्र–there, तत् तूर्णं–then immediately, प्रेरयेत्–yogi should infuse, ख त्रयेणतु–three ethers namely of śakti, vyāpinī and samanā महायोगी–great yogi, एतां बद्ध्वा–by doing this way, खे गतिं प्रतिपद्यते–enters in, खेचरी state. But this should he avoided as this is not real खेचरी मुद्रा। अर्थभावेन कुलमार्गेणगतिं एत्य–but when by holding the way of totality in one thought of universe (you must contemplate that everything is in one thought) चरते सर्वजन्तूनां–you must feel that in one individual being all individuals exist,नाम सा स्मृता- that is खेचरीमुद्रा Let us take a grain of some paddy. See the power of one grain, that it produces numberless plants. So one part of the thought is complete itself. This is the way of holding totality in each and every being that is the real खेचरी. That खेचरी मुद्रा, should be practized. श्री तन्त्रसद्भाव निरूपित– this खेचरी मुद्रा is said in तन्त्र-सद्भाव, as परसंवित्तिस्वरूपा–it is one with supreme consciousness.

एवमिह भेदात्मक मायीय समस्त क्षोभ प्रशान्त्या चिदात्मक स्वरूपोन्मज्जनैक रूपं मन्त्रवीर्यं मुद्रावीर्यं च आदिष्टम्। भेदात्मक मायीय समस्त क्षोभ प्रशान्त्या– When all differentiated way of the energy of or illusion of Lord Śiva comes to an end, चिदात्मक स्वरूपोन्मज्जनैकरूपं मन्त्रवीर्यं मुद्रावीर्यं आदिष्टं–Then here the power

of all मन्त्र and all states is explained and got experienced. मन्त्रवीर्यं is power of all मन्त्र (mantra),मुद्रावीर्य is power of all states-creative energy or creation is mantravīrya and establishment in that energy is mudrāvīrya

तदुक्तं कुलचूडामणौ— As is said in Kulacūḍāmaṇi—

एकं सृष्टिमयं बीजं एका मुद्रा च खेचरी।
द्वावेतौ यस्य जायेते सोऽतिशान्तपदे स्थितः॥ इति।

एकं सृष्टिमयं बीजं–one germ of I-consciousness mantra, एकामुद्रा च खेचरी–and power of one state of खेचरी, द्वावेतौ–both these, यस्य जायेते–when rise into the heart of any aspirant, सोऽति शान्त पदे स्थितः – he is said to be placed in the highest state of peaceful state of Lord Śiva.

स्पन्दे तु मन्त्रवीर्य स्वरूप निरूपणेनैव मुद्रावीर्यं संगृहीतम्–

In Spandakārikā mudrāvīrya is also explained by explaining the form of mantravīrya. There is no difference in the end.

यदाक्षोभः प्रलीयेत तदा स्यात् परमं पदम्–

When all this agitation comes to subside then one is said to be established in highest peaceful state of Lord Śiva.

इत्यर्धेन अन्यपरेणापि– though this half verse is said in another context in Spanda but चूडामण्युक्तं खेचरी स्वरूपं भङ्ग्या सूचितम्– it points towards the form of खेचरी also which has been explained in Kula Cūḍāmaṇi,

तदत्र मुद्रा मन्त्रवीर्यासादने–

the beginning of creative energy means mantravīrya and establishment in that creative energy is mudrā–vīrya or in another way mantravīrya means to be blessed with स्वरूपलाभ and mudrāvīrya means to get firmly established in स्वरूपलाभ. Therefore for achieving the power of mantra and mudrā, the means or upāya is explained in the following sūtras:—

गुरुरुपायः ॥ ६॥

Gururupāyaḥ // 6 //

For such attainment, the means is the master, the Guru, or master is the means for attaining the मन्त्रवीर्य–the supreme I consciousness and mudrāvīrya the establishment in that state.

गृणाति=उपदिशति सात्त्विकमर्थमितिगुरुः सोऽत्र व्यासिप्रदर्शकत्वेन उपायः। तदुक्तं श्रीमालिनीविजयेः–

स गुरुर्मत्समः प्रोक्तो मन्त्रवीर्य प्रकाशकः। इति।

गृणाति उपदिशति तात्त्विकमर्थमितिगुरुः– explaining the meaning of गुरुः it is said that he who infuses in his disciple through initiation the real meaning i.e. the supreme I-consciousness of Lord Śiva, he is Guru. सोऽत्र व्यासि प्रदर्शकत्वेन उपायः that master is said means here because he helps his disciple in giving the vivid picture of mantravīrya. तदुक्तं श्रीमालिनीविजये–as is said in Mālinīvijaya:—

सगुरुर्मत्समः प्रोक्तः – that master is said equal to Lord Śiva, मन्त्रवीर्य प्रकाशकः – who is the exponent of mantravīrya the supreme I-consciousness of Lord Śiva.

स्पन्देतु एवमादिप्रसिद्धत्वात् न संगृहीतम्-in Spanda such excellent feats of master are explained here and there, so it is not necessary to throw light on them here also.

अगाध संशयाम्भोधि समुत्तरण तारिणीम्।
वन्दे विचित्रार्थपदां चित्रां तां गुरुभारतीम्।। इति।।

पार्यन्तिकोक्त्या च एतदपि संगृहीतमेव।

अगाध–fathomless or deep, संशयाम्भोधि–ocean of doubts, समुत्तरणतारिणीम्–serving as a boat in going across, वन्दे– I bow to, such words as express an interesting idea, चित्रां तां गुरुभारतीम्–that wonderful speech of my teacher I bow to that wonderful speech of my teacher, serving as a boat, in going across the deep sea of doubts and full of such words as express many an interesting idea.

पार्यन्तिकोक्त्या च एतदपि संगृहीतमेव—

but this matter has been treated in the last verse.

गुरुर्वा पारमेश्वरी अनुग्राहिका शक्तिः–

Master is not master in worldly doings but master is universal energy of Lord Śiva.

यथोक्तं श्रीमालिनी विजये–
as is said in Mālinīvijaya
शक्तिचक्रं तदेवोक्तं गुरुवक्त्रं तदुच्यते।

that is a wheel of all energies and that is the mouth of master.
श्रीमत् त्रिशिरोभैरवेऽपि–
In Triśirobhairavatantra also it is said–
गुरोर्गुरुतराशक्तिर्गुरूर्वक्त्र गता मवेत् ॥ इति॥
The great energy of Great master is said to be the mouth of master.
सैव अवकाशं ददती उपायः–
that energy is the cause of understanding as upāya.

When a yogi, favoured by these limited powers rejects them and holds the supreme divine state then as the rise of natural pure supreme knowledge, the state of Śiva, residing in the eather of God-consciousness, is attained by him. When this pure knowledge, already explained in previous Sūtras, comes into existence without any effort by the supreme will of Lord Śiva, these limited powers are subsided and a yogi roams and flies in the eather of supreme knowledge this is the state of Lord Śiva who is the supreme embodiment of consciousness. Sādhaka becomes one with Śiva, as this is the way of rise of one's own as blessing state known as आनन्द। The following way, as explained in the following verse is not a real khecarī खेचरी state. A yogi seated in पद्मासन, puts his mind on the centre of navel, ṣits erect, not bends his body, leads his mind to that point where three आकाश (ethers) namely śaktiḥ, vyāpinī and samanā are found from Bhrūbindu to Brahmarandhra in the head by holding these there, then immediately, a yogi should infuse these three ethers, Doing by this way, mahāyogī, enters in khecarī; खेचरी, state. But this should be avoided as this is not real khecarī mudrā.

When by holding the way of totality in one thought of universe. You must contemplate that every thing is in one thought, you must feel that in one individual being all individuals exist, that is called khecarī; खेचरी mudrā. Let us take a grain of some paddy. See the power of one grain that it produces numberless plants. So one part of the thought is complete itself. This is the way of holding totality in each and every being.That is the real khecarīmudrā. That khecarī mudrā should be practized. This khecarī mudrā is said in Tantra sadbhāva as one with supreme consciousness.

When all differentiated way of the energy of, or illusion of Lord

Śiva, the agitation of that differentiated illusion of Lord Śiva, comes to an end, then here the power of all mantras and all states is explained and got experienced, मन्त्रवीर्य (mantravīrya) power of all mantras, मुद्रावीर्य (mudrāvīrya) is the power of all states, creative energy or creation is mantravīrya and establishment in that energy is mudrāvīrya. As is said in Kulacūḍāmani:- that one germ of I consciousness mantra, and power of one state of khecari, both these when rise into the heart of any aspirant, he is said to be placed in the highest state of peaceful state of Lord Śiva.

In Spanda, mudrāvīrya is also explained by explaining the form of mantravīrya there is no difference in the two. It is said there that when all this agitation comes to subside, then one is said to be established in highest peaceful state of Lord Śiva. Though this half verse is said in another context in Spanda, but it points towards the form of khecarī also which has been explained in Kulacuḍāmani. Thus the beginning of creative energy is mantavīrya and establishment in that creative energy is mudrāvīrya. Therefore for achieving the power of mantra and mudrā the means are explained in the next sūtras, wherein it is said that master is the means for attaining the mantravīrya and mudrāvīrya state. Explaining the meaning of Guru it is said that he who, through initiation, infuses in his disciple, the real meaning, i.e. the supreme. I consciousness of Lord Śiva, is Guru. That master is said means here because he helps his disciple in giving the vivid picture of mantravīrya, As is said in Mālinītantra also that the master, who is the exponent of mantravīrya, is said equal to Lord Śiva. In Spanda such excellent feats of master are explained here and there so it is not necessary to throw light on them. But this matter has been treated in the last verse, by the author of Spanda where in it is said that "I offer my obeisance to that wonderful speech of my master serving as a boat in crossing the fathomless ocean of various doubts and full of such words as express many an interesting idea.

Master is not master in world by doings but master is universal energy of Lord Śiva, as is said in Mālinīvijaya that, that is the wheel of all energies (śakticakra) and that is the mouth of master. In Triśirobhairavatantra also it is said that the great energy of great master is said to be mouth of master. That energy is the cause of understanding as upāya.

MEDITATIONS–EXPERIENCE OF A SHIVA YOGI

SHIN SHIVA SVAYAMBHU

(continued from last issue)

Then like a diamond silk thread, is the very little axis of the pillar coming through the middle of the head to the throat, between neck and larynx-going through the whole body to the breastbone, to the level of the heart and to the seat–not ending there but raying into the depths. And in the middle of the head, a wonderful centre, a wonderful living, breathing centre, breathing in, breathing out at the same time, constantly renewing itself according to the law of all, "suns"–in the very centre like in a cave, which is also known as Brahma's cave, there is fine, wonderful lingam of light, finer than the smallest star that you can see in the sky. And this spark, this star, a living centre of creative energy, which is pulsating, vibrating–we have radiation, emanation–this very centre in the middle of the head is now flying as though in an open space in the dark night–you are a flying star in the universe, but this star is swimming on the mirror of the consciousness of life, the ocean of infinite goodness, eternal life and bliss–you are sitting in this water up to the middle of the head, your nose is under water, your whole body is underwater, only your eyes and the centre between, is above the water. Imagine you are sitting in this water and your eyes are just looking over the mirror and the lower part of the eyes are already a little in the water and you are looking over the endless mirror of the calm, peaceful ocean which is God Himself. Here in that centre, swimming in that mirror which is endless, you have your creative centre of truth, love, sudden knowledge and very complex wisdom–but it is also your centre of order, you can also order whatever you want on that level of your tree of life. If you wish something and you wish it with all your heart, after having examined whether this wish is pure and meaningful and good–good for you, good for others–after having experienced if this wish is unsel fish–then you concentrate on that very middle point of the head and you speak so that what you wish, what you would like to see realised–you speak it out as if it would be already realised because it is the creative centre of your higher self and this does not

know dualism, it only knows it is–but if this very centre is touched by such a word then it opens and can realise–and then you think that whatever you wished is now going from that centre into the whole mountain of your body. The message must go to all the cells and organs. Relax, let go of the body, bow.

Once more come to the vertical position, once more the body should obey, be calm, without movement, only gently breathing. Once more you bring the chin to the larynx and you open the neck. You remember the ray. You bring it from the highest point to the deepest point - you remember the diamond silk thread, like a very hot string of an instrument –the golden string of the Rudra veena–in high tension between the highest and the deepest poles. You are just sitting and you have this string, this line of light and gold in the middle of your pillar. And there is this wonderful star, in reality it is very very small, but the absolutely wonderful and powerful center of yourself–light and fire in the middle of your head, in that cave, swimming on the mirror of consciousness of life, on the level of the middle of the head and Ajna cakra. And in breathing in, you bring the energy to that point and the energy of your eyes, ears, nose and mouth, and the message of the sense of touch is going through the whole body to the middle of the head, to the star, to that very centre of yourself.

Now control your breathing, be in your breathing in inhaling, be in your breathing in exhaling, but bring in that light which cools the nose from the inside, bring this light to that centre of the head–and breathing out bring it from the centre through the nose and out–breathing in coolness, breathing out warmth. And this centre is so wonderfully brilliant that it is very easy to concentrate on that point, to feel it. How should you concentrate? The feeling you have when someone tenderly strikes the skin, this feeling you remember and you try to feel exactly the same kind of feeling - but you are touching the mirror and you feel the mirror and you feel this centre–looking to that centre–you trust that you can feel this centre–looking to that centre as the most holy part of Shiva's temple, the sacred place of Shivaling. Breathing in, you bring the light from all sides to that point of the wonderful star, lingam–breathing out you send out the light in all directions.

How should you concentrate? You should concentrate as if you had

to bring a most fine diamond silk thread through the eye of a fine needle - so you concentrate, you are looking to that point as if you were seeing how you can put this most fine thread of consciousness through this door, which is the smallest door there in the middle of your head. If you come to the very centre there, if you awaken the very centre, suddenly you feel as if the whole head were contracting and coming to this centre–you feel as if unknown and not physically existing muscles were attracting the energy, pumping there in the very centre, giving you energy. So breathing in you concentrate and breathing out you relax and the circles are wider and wider - but if you could enter the inside of this most brilliant but little light in the middle of the head, swimming on the mirror of life consciousness if you could go in there to the smallest part, suddenly you would be wide, incredibly wide, like the universe–because the smallest is at the same time the most powerful, but expansive.

Always bring now in the breathing the Puja to this place, offering to the God at the very centre of your head. In that cave, to this lingam you bring your offerings, the good smell, the light of the eyes, the sound of the bells the fire is the will the love for God.

Imagine that you become very little, very little, very little - your whole being, all that you really are comes from all sides to that point. Now for a while you are only breathing and concentrating and you can say inwardly to this very centre where we meet, because I am this centre and I am in this centre and I am your concentration and I am you and I am the aim of your concentration, it is the truth, wisdom and love and the infinite, deep goodness of God. The one who comes there is completely changed, he shall have more, or directly, at once the fullness of the complete human being and oneness with me and the Goddess. Your body is the temple where these things happen. Breathing in, breathing out, agreeably, gently, but feel the inside of the nose.

Now I don't speak for a while and you stay near this lingam, speak your most beloved and most intimate mantra or word or prayer inwardly. Relax.

(courtesy Mrs. Christene Killenberger)

FOUR TYPES OF SPEECH

Dr. B. N. Pandit

(continued from last issue)

It shines only as "Aham" and not at all as "idam" "No thisness but only the infinite I-ness shines in it. The whole objective existence remains merged in such I-consciousness, just as all the elements of a plant lie merged in its seed. Since the pure psychic lustre of such infinite I-consciousness is the infinite awareness and since it reveals to a person his exactly real self in its correct and true nature, it is taken as a speech and is termed as *parā-vāc*–the supreme and transcendental speech consisting of pure awareness of the real self. As has been already said, awareness is the essence of all speech and speech is a means of revelation, such infinite self-awareness, enlightening the Supreme truth, is accepted as *parāvāṇī*, the supreme speech. This says Utpaladeva about it:–

चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परा वाक् स्वरसोदिता।
स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मनः॥
सा स्फुरत्ता महासत्ता देश कालाविशेषिणी।
सैषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिनः॥
आत्मानमत एवायं ज्ञेयीकुर्यात्·····।

Citiḥ pratyavamarśātmā parā vāk svarasoditā;
Svātantryametanmukhyaṃ tadaiśvaryaṃ paramātmanaḥ;
Sā sphurattā mahāsattā deśa kālāviśeṣiṇī;
Saiṣā sāratayā proktā hṛdayaṃ parameṣṭhinaḥ;
Ātmānamata evāyaṃ jñeyī kuryāt----------;
(I.Pr. I-5-13 to 15)

Self awareness is the very soul of consciousness. It is the self-risen supreme speech (vāc) and is that self-dependence of the Absolute God which is known as His Supreme Godhead. It is a sort of vibrative activity and is the supreme basic existence, not conditioned by time, space etc. Being the real essence of the Supreme Lord, it is said to be His inner soul. It is the virtue of such self-awareness by which He manifests Himself as the objective existence.

Such-all-inclusive, pure and infinite consciousness, being the source

of the manifestation of all phenomena, is known as the absolute *Brahman*. Śaiva philosophers see the absolute Godhead as the very essential nature of the absolute *Brahman,* the word being derived out of the root. Beṛhi vṛddha, meaning evolution. Since the self awareness evolves into all phenomena in the manner of a reflection, it is termed as brahman, the evolutor who evolves like that. Thus says Abhinavagupta in his Vivaraṇa on Parā-trīśikā:—

ब्रह्म बृहद् व्यापकं बृंहितंच; न तु वेदान्त पाठकाङ्गी-
कृत-केवल-शून्यवादाविदूर-वर्ति-ब्रह्मदर्शन इव। (प.त्री.वि. पृ. 221)

Brahma bṛhad vyāpakaṃ bṛmhitaṃ ca; na tu
Vedānta-pāṭhakāṅgīkṛta-kevala-śūnyavādāvidūra-
varti brahma-darśana iva.

"Brahman is such an infinite and all-pervading reality which has evolved (into the phenomenal existence). It is not an entity like the Brahman of the scholars of that Vedānta which comes very close to Śūnyavāda."

Since awareness, being capable to illuminate, and being the source of all speech, is termed as *Vāc,* and since speech consists of words or *śabdas* the supreme Brahman has been termed by Bhartṛhari as *Śabda-brahman*, the word *śabda* meaning divinely potent, pure, infinite and self-aware consciousness.

An artist forms the image of his creation in his mental apparatus before creating it externally. His creation shines there in the form of Madhyamā. Before such mental formation of its image it flutters in his inner-most person in the form of a stir or restlessness aimed at the creation of such image. The whole art, alongwith all its essential elements, revolves in an unmanifest and undiversified state within such inner restlessness of the artist. That is the art in the state of *paśyantī*. The original seed of the creation of the art at all these stages of its outward manifestation lies basically in the inner-most centre of the whole personality of the artist. It lies there in the form of the art-creating power of the artist who is aware of having such power. Such awareness of the powerfulness, on the part of the artist, shines as his art in the state of *parā-vāc,* the supreme speech.

Brahman, the Almighy God, is the greatest of all great artists and the whole phenomenal existence is his divine art. It lies in Him in an

unmanifest form and shines there in its nomenal aspect consisting of pure and divinely potent infinite I-consciousness. The absolute reality is fully aware of the divine power or potency lying in it. Such aware-ness being the *parā vāc* is the basic source of the limitless blissfulness of the absolute. The surges of such blissful awareness take the form of paśyantī in which the absolute reality becomes actively inclined to manifest its divine powers out-wardly as well and in which the manifestable element starts to shine faintly in an undiversified form. Such restless inclination of self-awareness is the basic *paśyantī vāc*. The maninfestation of the undiversified manifestable becomes clear and distinct at the next outward step of *paśyantī*. These are the Sadāśiva and Īśvara–stages respectiyely. The further outward vibratory activity of *paśyantī* gives rise to definite ideal images of creation taken as the *madhyamā* type of awareness; and such images are followed by their actual outward creation, known as the Vaikharī state of awareness. In this way the original essence of the whole creation (that becomes manifest through various types of speech), shining basically as divinely potent and pure self-awareness, takes up, by stages, the different forms of the creation of the phenomenal existence. That is what Bhartṛhari meant to say. But since all such manifestation appears in the manner of a reflection in a mirror, the pure I-consciousness does not actually become transformed into phenomenal existence. Therefore the great philosopher used the word "Vivartate" just to keep the Sāṃkhya theory of *pariṇāmavāda* in such respect. He did not use the word concerned in the sense in which it was afterwards used by the authors of Advaita Vedānta. Therefore he did not mean to preach *VIVARTAVĀDA*, but meant to establish a theistic absolution expressed by the authors of Āgamas and Upaniṣads.

The previously mentioned great authors of Kashmir Śaivism have thus explained the principle of *Śabda-brahman* in a convincing manner and have thrown a wonderful light on the nature of *paśyantī* and *parā* types of speech. They have accepted the basic view of Bhartṛhari but have raised objection to the grammarian inter-pretations of Vākyapadīya on two points: Such interpretations assert that *paśyantī* is itself *parā*. But Somānanda and Utpaladeva criticised and refuted their such assertion. They argued that an awareness, which beholds something, cannot be taken as *parā*,

the absolute transcendental speech, as it is aware of some objective element that is beheld by it. The word *paśyaṇtī* is derived out of a root meaning an objective action denoted by a transitive verb. Therefore it must be a position below that of *parāvāṇī* shining as the transcendental and absolute monistic reality known as *Brahman*. The other objection raised by them is with respect to the previously mentioned theory of *vivarta. Vivarta,* as developed later in Advaita Vedānta, is either a mere appearance of something that does not really exist at all, but appears to a being on account of a delusive cognition based on his ignorance; or it is a delusive appearance of something in the form of some other thing on that very account. The phenomenal universe does not really exist, but appears as an existent reality. It appears to ignorant beings as world, as soul and as God through their delusive knowledge. That is the theory of Vivarta as developed in Advaitavada: The authors of Kashmir Śaivism do not agree with such theory of *vivarta.* They raise many objections against it. They put forth logical arguments and psychological findings and assert the truth that the wonderfully utilitarian phenomena, appearing in the universe, cannot have ignorance or Avidyā as its source, because Avidyā is a substancless supposition and the phenomena are substancially existent realities, having special types of utility. Relying on their intuitional revelations, they assert that all phenomena do exist in Brahman, the infinite, divine, potent and pure theistic I-consciousness. They emphasize the fact that all phenomena become externally manifest by virtue of that divine and playful stir of such absolute consciousness which throbs in it in the fields of *madhyamā* and *vaikharī*. Thus they lay emphasis on the theistic nature of the absolute reality and take its such nature as the basic cause of the appearance of the whole phenomenon. It is thus the principle of theistic absolutism, and not *vivarta*, which they mean to propound. Bhartṛhari, in their view, meant to say that *Brahman* manifests outwardly the phenomenon that exists in Him in an unmanifest state. The *saṃvṛta*, or inwardly hidden, universal substance is just brought by him to the *vivṛta*, or clearly manifest state. Such theistic and monistic absolutism, and not the *vivartavāda* of the followers of Śaṅkarācārya, is thus the fundamental philosophic principle of Bhartṛhari as understood by the ancient authors of Kashmir Śaivism. But the grammarian commentators

of Vākyapadīya missed such point because they were led away by the vivarta theory of Advaita Vedānta. That is what great-author like Somānanda means to say.

As asserted by Somānanda in his Śivadṛṣṭi (vii-107), the tradition of saiva monism continued in India for long ages right from the hoary pre-historic past . The correctness of his such assertion is supported by the remains of the Indus valley civilization. Some very important elements of practical Saiva monism are clearly seen in some very ancient and medieval works like Bhagavadgītā, Yājñavalkya-smṛti, Avadhūtagītā, Yogavāsiṣṭha, Śiva-mahā-purāṇa, ascetic poetry in Mahābhārata, Tripurā-rahasya, Kumāra-sambhava etc. That proves the continuity of the ancient tradition even though a thorough academic evolution of such school of thought did not happen before the ninth century A.D. Bhartṛhari must have got initiation in Śaivayoga from some Siddha belonging to some line of the teachers of such tradition. He must have been impressed so much by the results of his successful practice in Śaiva yoga that he could not suppress an eager urge to express some fundamental principles of Śaiva monism even while composing a detailed work on the Sanskrit grammar namely Vākyapadīya.

MALINI - *Quarterly Magazine*

Annual Subscription : Rs. 100.00 (without postage charges)

Rs. 130.00 (with postage charges)

Overseas Subscription : US$ 26.00

All Correspondence & Subscription must be sent to the Branch Office :

Delhi Kendra R. 5-Pocket-D, Sarita Vihar,

New Delhi - 110 044. Tel. 6958308, 6943307

A RE-APPRAISAL OF LAL DED

Prof. A.N. Dhar
(Ex-Head of the Deptt. of English, Kashmir University)

continued from last issue

Lalla was a rare genius - both as a saint and as a Poet - is disputed by none, and is acknowledged by all Kashmiris, Hindus and Muslims alike. It is essentially through the vaakhs, which she uttered as direct outpourings from her heart rather than as consciously wrought poetic compositions, that Lalla became very popular as a saint-poet in Kashmir. As Professor Jayalal Kaul very aptly observes, there was no polarization between Kashmiri Hindus and Muslims in her time, the *vaakhs* made a tremendous impact on the collective psyche of the two communities. Perhaps most Muslims being only fresh converts to their new faith were as receptive to the wise sayings of the saint-poet as the Hindus who then must have still been in the majority as the natives of the valley. Even after the latter got reduced to a minority in consequence of conversions, Lalla continued to be held in reverence as 'Lal Ded' by both the communities. She was also called 'Lalleshwari' by one community and 'Lalla Arifa' by the other, showing that both thought very highly of her spiritual attainment in accordance with their religious perceptions. If a Muslim hailed her as an 'Arifa', he didn't mean to convey that she had been influenced by Islam in any remarkable way or had accepted a new faith. Later, some Muslim scholar made deliberate distortion of facts in asserting that Lalla had experienced inward "illumination" only after coming into contact with Sayyid Hussain Somnani and had then got converted to Islam. This wishful "myth" can't stand the test of reason and must be exploded. It has, however, done the mischief : I recall having read in a secondary source material on Lal Ded that the saint-poet has been mentioned as a convert to Islam in some encyclopaedia. If Muslim scholars draw a parallel between Rabia and Lalla as love-mystics, this seems a befitting comparison and should be acceptable to us. But to distort history and try to perpetuate a lie about Lalla's faith should be rebutted with convincing arguments as Prof. Jayalal Kaul has already done on the basis of his sound Lal Ded scholarship.

Significantly, it is Lalla's younger contemporary, Nunda Rishi or Sheikh Noor-ud-Din Wali acknowledged by the Kashmiri Muslims as

well to have been blessed by her at his birth, who has paid her this befitting and glowing tribute:

तस पद्मापोरिचि लले,
तमि गले अमृत पीवा।
स्वह साऽन्य अवतार ल्वले,
त्युथुय मे' वर दितो दीवा।।

That Lalla of Padmanapora (pampora) - she drank
Her fill of divine nectar;
She was indeed an *autar* of ours (dearly loved)
O God, grant me the same boon !

Nunda Rishi held Lalla in great esteem and looked upon her as a saint of remarkable achievement, having all the qualities of a divine incarnation. Evidently, he aspires to emulate her, craving to have "his fill of nectar" too as a boon from God. Keeping in view the content of the verse quoted, the responsive reader when informed of the following remark about Lalla made by Sir Richard Temple in his book titled *The Word of Lalla* (C.U.P., 1994) will hardly give any credence to it (the remark) but reject it as a piece of misinformation:

Lalla is said to have been influenced by
the great national patron saint of the
Kashmiris named Noor-ud-Din Wali of
Tsrar-I-Sherif. *(See p.3. of Richard Temple's book).*

Prof. Jayalal Kaul, quoting the remark in his book titled *Lal Ded*, makes his observation on it in these words: As every Kashmiri, Hindu or Muslim, sees it, the truth is the other way round. Besides, Lal Ded should have been sixty, if not more, when Nunda Rishi was born.

(Quoted from p. 72 of Jayalal Kaul's 'Lal Ded')

Yes, the real truth is that as a saint, Nunda Rishi was greatly influenced by Lal Ded. It was his unqualified veneration for the saint-poetess that had a great impact on the devout Muslims, his followers. That explains why for several centuries Kashmiri Muslims have continued to own her, delighting in memorizing and quoting her sayings as Kashmiri Hindus do, singing the *vaakhs* on appropriate occasions–festive events such as marriage ceremonies and at cultural functions.

The Sufi Kashmiri poet, Shams Faqir's extended tribute to the spiritual qualities and attainments of the celebrated poet-mystic Lal Ded. Aware of her religious background and her upbringing in a Saivite Kashmiri Pandit family, Shams Faqir uses conspicuous Kashmiri words of Sanskrit origin, derived from the Hindu scriptures, while paying his poetic homage to the noted 14th centuary saint-poet. The words include terms such as *praan* (vital air), *jnaan* (knowledge), *aakaash* (ether), *karma vaan* meaning 'life's workshop' it generaly means 'a performer of good actions' or 'a fortunate person having performed good actions in his or her past life'). Shams Faqir is categorical in duly recognizing Lalla's religious background and faith; he acknowledges her individual genius as a spiritual Master and her 'ascent' to the highest Abode.

On the basis of the internal evidence from the *vaakhs,* the thoughtful reader is left in no doubt about Lalla's spiritual moorings as a Yogini: her Saivite upbringing in a Kashmiri Brahman family. We have unmistakable clues in some of Lalla's *vaakhs* about her initiation into yoga at the hands of her Guru, **'स्यदुॅमोल'** (sedamole), who was an accomplished *siddha* as a follower of the Saivite path. The very first *vaakh* (from among many *vaakhs)* in which Lalla talks of her initiation into spirituality and of the remarkable effect of the *Guru mántra* on her, convinces us that she immediately experienced "illumination of the self". She had no reason to roam any more in search of a spiritual guide:

ग्वरन वो' ननम कुनुय वचुन,
न्यबरुॅ दो'पनम अंदर अचुन।
सुय गव ललि वाख तुॅ वचुन,
तवय ह्योतमयनंगय नचुन।।

The Guru gave me but one precept,
"From without turn inward",
It came to me "Lalla" as God's words;
I started roaming nude.

The *vaakh* explicitly conveys that Lalla experienced instant spiritual transformation and was thrown into a state of ecstasy on receiving the Guru's word. Elsewhere she says **"वुछुम पंऽडित पननि गरे"**(I found the all-knowing self within-in the sanctuary of my own heart),**"वुछिम शिव**

तुॅशक्ती मीलिथ'' "I saw Siva and Sakti conjoined in eternal embrace" and ''तवय वऽचुॅस प्रकाशस्थान'' ("That's how I attained the abode of Light". A tone of confidence and self-assurance, based on a sense of spiritual fulfilment and an awareness of the Ultimate Truth, is clearly reflected in these utterances of Lal Ded. We are convinced that she has got to the root of the matter and attained self-realization. Her affirmative statements, such as those quoted, confirm her Hindu faith throughout (call it Saivite if you see it as a distinct cult within *Sanatan Dharma).*The fact is that she had no reason to seek further direction or spiritual succour from any visiting divines or preacher belonging to a faith other her own. All the so-called evidence given by the Muslim scholar to prove her conversion to Islam is nothing but an unacceptable tissue of lies.

I should like to mention a few scholars from our own community who have made some observations on Lalla that don't seem tenable. They seem to have supposed or imagined that she played the role of a committed social activist, a professional preacher or teacher of spiritual values and brought about fusion of diverse creeds and schools of thought. Forgetting that Lal Ded didn't compose her *vaakhs* as professional poets compose and publish their verses today, they draw their own inferences on which they base very facile and untenable views as if Lalla meant to preach and propagate a philosophy of her own through her *vaakhs.* She brought about a "synthesis of the two philosophies". The Trika and Islamic Sufism.

Again, in the view of Daya Kishen Kachru "Lalleshwari, took the best of Islamic thought and fused it best with her own creed".

Lalla's *vaakhs* convey a message of peace and harmony and one can see that she owes it as much to her educational background in a Saivite Kashmiri Brahman family as to her spiritual enlightenment based on her own *sadhans.* There is a definite impress of the saivite thought and terminology on her *vaakhs.* Whatever her background, there is also evidence in the *vaakhs* of a state of awareness and of an outlook far transcending cults. Her teaching is, in fact, in tune with our *Sanatan Dharma* that is exceptionally Catholic and all-embracing, acceptable as much to emancipated Hindu as it should be to the liberal Muslim. It is her direct "encounter" with the Ultimate Truth as a true Yogini or mystic that explains why Lalla *vaakh* appeals to men of all shades of religious

thought.

Professor Jayalal Kaul has been consistent in his description of Lal Ded as a Saivite Yogini. In this connection, he has been at pains to clafify in what ways Trika and Vedanta are distinguishable as non-dualistic philosophies. In particular, he characterizes Shankara Vedanta as illusionist and praises the Saivite philosophy of Kashmir for its view of the world as Real. As a student of the Gita and on the basis of my reading of some of the Upanishads (in English translation), I don't find Vedanta altogether distinct from Trika. Both philosophies are rooted in the Vedas and are complementary to each other. If according to Trika the world is Real, a manifestation of the *Svarupa,* doesn't Lord Krishna affirms the same truth in the Gita?

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।।

At the end of many births (of striving), the knowing one makes me his refuge, realizing that Vasudeva is All. A great soul of that type is rare to find. So we see, as the Lord tells us in the Gita,'**वासुदेवः सर्वमिति**' (All is Vasudeva), implying that God inheres in what we see as the external world, which is as such Real - a manifestation of God. This is what Trika also emphasizes. In the Sivastotravali, Utpaladeva - celebrated Kashmiri Saivite philosopher and poet - gives equal importance to seeing Siva as **विश्वमय** (immanent in the world), as well as **विश्वोत्तीर्ण** (transcendent or beyond the phenomenal world). As a devotee of Siva, he wants to have **शिवाभासः** (consciousness of the Supreme Self) in the wakeful state - while experiencing the world through the senses, and not merely when he is absorbed in meditation. If there were no compatibility between *Saivism* and Vedanta, Abhinavagupta (famous Kashmiri Saivite philosopher writer after Utpaladeva), would not have attempted an interpretation of the Gita in terms of the Trika philosophy.

A word about Sankaracharya, who is branded an illusionist by some Saivites we must not forget that he is also credited with being the author of the Sanskrit work titled Saundarya Lahiri. What is *mayavad* for the Vedantin assumes the form of *saktivad* in the book mentioned as Shankara's point of view undergoes a change. In a Sanskrit poem attributed

to him, he uses the line **'चिदानंद रूपः शिवोऽहं शिवोऽहं'** as the refrain–a statement that a Saivite believes to be very true of the Self. I feel that the Lal Ded scholar must avoid seeing the saint-poet as an exponent of only a particular school of thought-Trika. So long as Lalla is a poet (and she is so pre-eminently), she cannot afford to be rigorously doctrinal as a systematic philosopher. No doubt, many of her *vaakhs* have the preacher's tone. She is a seeker too in a number of the *vaakhs,* her poetry is mystical as the poetry of aspiration as well as of fulfilment.

If we over-stress Lalla's being a Saivite poet, we then overlook her catholicity. In one of her *vaakhs* she says clearly that she sees *Siva* as no different from *Kesava.* How true she sounds when she says **अभ्यासुॅ के गनिरय शास्तुर मऽठिम** (I forgot the *sastras* as my spiritual practice gained in depth and intensity). And as Lalla's practice advanced, as she went up the ladder of meditation and crossed all the hurdles–negotiated the *cakras*–her utterances became spontaneous as mystical outpourings, coming straight from the heart. What interestingly cannot escape our attention is that even when she has the preacher's tone in some of her *vaakhs,* she is not overtly didactic; we don't see a "palpable" design in the whole body of her verse-sayings. That explains why her poetry is soul-stirring.

Finally, it is the *vaakhs* of Lal Ded - that are aphoristic and, as such, loaded with wisdom - on which her great popularity as a mystical poet largely rests. And she is a great poet because, she is highly spiritual and she is gifted with an extraordinary poetic sensibility. The *vaakhs* bear testimony to Lalla's genius as a saint and poet in one. What the American literary critic, Helen C. White, remarks about the mystic poet is unreservedly applicable to Lal Ded as a poet:–

> It is not a strange hybrid of poet and mystic who writes a mystical poem. It is not a man who writes first as a mystic and then as a poet. It is not even a mystic who turns over to the poet who happens to dwell within the same brain and body the materials of his insight to be made into a work of art by the competent craftsman. It is rather that the same human being is at once poet and mystic, at one and the same time from the beginning of the process to the end. *(The Metaphysical Poets: A Study in Religious Experience,* 1936, rpt. New York, p. 22.)

विज्ञान भैरव - समीक्षात्मक अध्ययन

मूल प्रवचनकार

शैवाचार्य ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजू महाराज

(गतांक से आगे)

भावे त्यक्ते निरुद्धा चित् नैव भावान्तरं व्रजेत्।

तदा तन्मध्यभावेन विकसत्यतिभावना॥ ६१॥

(**अन्वय**—त्यक्ते भावे चित् निरुद्धा (सती) भावान्तरं नैव व्रजेत् तदा तन्मध्यभावेन भावना अति विकसति॥)

दो भावों (पदार्थों) की प्रतीति के समय में चित की एकाग्रता को, अभ्यास की अधिकता से, अथवा चेतना को समाहितता के अतिशय से, एक स्थान पर स्थापित कर ले। उसे पहिले साक्षात्कार किये गये दूसरे बाहरी पदार्थों की ओर आकृष्ट न होने दे, अर्थात् किसी एक भाव में चेतना को लगादेने पर फिर किसी दूसरे भाव की तरफ उसे उन्मुख नहीं होने दे। तब मध्यमधाम में चित्तकी विश्रान्ति हो जाने से श्रेष्ठ भावना (मध्य में विश्रान्ति की भावना) भलीभांति विकसित हो जाती है॥

भावेत्यक्ते= स्वामीजी महाराज ने मुद्रित पुस्तकों में "भावेन्यक्ते" इस पाठान्तर को गलत करार दिया है। "भावेत्यक्ते" पाठ को ही समीचीन माना है। वास्तव में इस धारणा में दो पाठान्तर हैं। पहिले प्रकार की धारणा में साधक केवल एक घाट या किसी अन्य पदार्थ को देखे। जब उस घट या पट की ओर हम देखते हैं तो हमें चाहिए कि हम उसकी ओर ही देखते रहें किसी अन्य की भावना न करें, स्थानस्थित अन्य पदार्थों फूल, कागज, टेपरिकार्डर आदि को ध्यान में न लायें। एक मात्र, एकाग्रचित्त, से उसी एक अब का स्मरण करे।

निरुद्धाचित् - अपनी चेतना को स्थापित करे। आपकी चेतना उसी एक आलम्बन पर समाहित रहनी चाहिए।

नैव भावान्तरं व्रजेत्= किसी दूसरे आलम्बन को आधार न बनावे। अपनी समाहितता को जीवन्त रखो। उसमें संकोच न आने दो। जब आप इसी एक पदार्थ को बार-बार अवलोकन कर श्रान्त होंगे तो समझना आपकी समाहितता निर्जीव हुई है अतः वह किसी अन्य पदार्थ को देखना चाहती है या किसी नवीन भाव को अपनाना चाहती है। पर इस संस्कार से परे रहना चाहिए। इसे निर्जीव न होने देना चाहिए। एक ही भावात्मक चित्तैकाग्रय को सुदृढ़ बनाना चाहिए अन्यथा यह धारणा शान्त हो जाएगी। अतः इस धारणा को प्राणनशील रखने के लिए किसी भी दशा में दूसरे भाव का आलम्बन नहीं

लेना चाहिए।

तन्मध्यभावेन= कई पुस्तकों में 'तन्मयभावेन' पाठान्तर है। पर स्वामीजी महाराज ने 'तन्मध्यभावेन' पाठ को ही सुसंगत ठहराया है। इसका तात्पर्य समझाते हुए उन्होंने कहा है कि जब हम एक आलम्बन को छोड़ेंगे और अन्य आलम्बन को बुद्धिग्राह्य नही वनायेंगे तो एक को छोड़ने और अन्य को पकड़ने के मध्यमार्ग में ही स्थित रहना चाहिए। उस दूसरे भाव में लीन नहीं होना चाहिए हालांकि पहले भाव के साम्राज्य को भी अपदस्थ करना चाहिए।

यदि हम 'तन्मयभावेन' पाठ का अनुशीलन करेंगें तो उसका अर्थ यह होगा कि हम उस आलम्बन के साथ एकाकार होंगें। एकाकारता को पाने पर आलम्बन प्रधान एकाग्रता परप्रमातृप्रधानचेतनामें विलीन होती है। उस विशेष आलम्बन प्रधान चेतना तथा विशेष परप्रमातृप्रधानचेतना का मिश्रण विश्वमयचेतना के साथ एकाकार होता है।

किसी शिष्य के पूछने पर कि क्या "जीवन्त" रखने का तात्पर्य यह है कि हमें अपने ध्यान का एक मात्र उद्देश्य इसी को रखना चाहिए? तो स्वामीजी महाराज प्रत्युत्तर में समझाते हैं कि उसी एक आलम्बन पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। यदि किसी प्रकार से इसमें शैथिल्य आयेगा तो समझना चाहिए कि उक्तधारणा निर्बीज हो रही है।

इस समाहितता को विना मीचे, निश्चेष्ट खुली आंखों से सजीव रखना चाहिए।

इसकी दूसरी व्याख्या इस प्रकार है:- **'भावे त्यक्ते'**= दो पदार्थों को रखिये पर इन दो पदार्थों पर ध्यान केन्द्रित न करें। एक पदार्थ की ओर एकाग्रचित्त से देखते रहिए। जब आप इस एक पदार्थ का अनुशीलन करते रहेंगे और इसका अच्छी तरह से मनन करेंगे फिर इसे त्यागे। तत्पश्चात् दूसरे पदार्थ को ग्रहण करने का प्रयास करे । इसकी ओर न देखें। इसे भी छोड़े ताकि तीसरी वस्तु को बुद्धिग्राह्य बनाया जाये, पर उस अन्य वस्तु की ओर अभी न जाइये। इसे तन्मयीभाव न समझकर तन्मध्यभाव समझिये। **अतिभावना**= अहंपरामर्श की चरम अवस्था, **विकसति**= प्रफुल्लित हो उठती है।

इसे आणवोपाय धारणा न समझकर शाक्तोपाय धारणा ही समझना चाहिए। क्योंकि आणवोपाय धारणा तभी संभव है जब मन्त्रों की सहायता श्वासोच्छ्वास की सहायता, या धारणा की सहायता एक साथ ली जाये। जब चिन्मयस्वरूप के आनन्द का आलम्बन के आधार पर, अभ्यास किया जाये तो वह शाक्तोपाय प्रक्रिया होती है।

सर्वं देहं चिन्मयं हि जगत्वा परिभावयेत्।
युगपत् निर्विकल्पेन मनसा परमोदयः॥ ६२॥

(अन्वय–सर्वं देहं जगत् वा चिन्मयं युगपत् निर्विकल्पेन मनसा परिभावयेत्। (अनया धारणया)

परमोदयो भवति॥)

पैरोंसे लेकर चोटी तक अपने सारे शरीर की अथवा इस सारे संसार की एक साथ अक्रमरूप से चिन्मय स्वरूप में भावना करें। इस तरह की धारणा से मन की निर्विकल्प दशा की प्राप्ति होती है जिससे हर प्रकार से प्रकाश ही प्रकाश के अभिव्यक्त होने पर योगी परमोदय अवस्था का भागी बन जाता है॥

आपने यह कल्पना करनी है कि आपका शरीर, वैयक्तिक तथा सीमित न हो कर वास्तव में विश्वमय है। इसीलिए इसमें कहा गया है कि "सर्वं देहं जगत्वा" अर्थात् पैरोंसे लेकर चोटी तक आपका यह सारा शरीर संपूर्ण विश्व है। इसकी कल्पना भी साथ ही करनी है कि यह समूचा विश्व अहंपरापर्श से अनुस्यूत है।

चिन्मयं परिभावयेत्—आपने एक साथ यह सोचना और मानना है कि यह मेरी देह तथा समूचा विश्व एक है, तथा चित्परामर्श से ओतप्रोत है।

एक शिष्य के पूछने पर कि कारिका में "वा" का प्रयोग क्यों किया गया है। तो स्वामीजी महाराज प्रत्युत्तर में बताते हैं कि 'वा' शब्द का प्रयोग इस कारिका में "चार्थे नतु विकल्पे" ही प्रयुक्त हुआ है। अतः वा का अर्थ यहां च-(और) न होकर है या नही।

समूचे विश्व के सन्दर्भ में अपने शरीर की कल्पना करनी है। **सर्वं** से तात्पर्य है पैरों से चोटी तक।

निर्विकल्पेन मनसा—विकल्पशून्य स्थिति वाले मन से इस अवस्था को प्राप्त करना चाहिए।

यह शाक्तोपाय की चरम अवस्था है। यह आणवोपाय धारणा नहीं हो सकती है क्योंकि आणवोपाय में पाये जानेवाले तत्त्वों का इसमें अभाव है। शाम्भवोपाय भी नहीं क्योंकि इसमें परिभावयेत् की कल्पना की गयी है।

आपने एक साथ यह परिकल्पना करनी है कि पैरों से चोटी तक आपकी देह तथा सारा संसार एक है जो कि अहंपरामर्श से परिपूर्ण है।

स्वामीजी महाराज कहते हैं कि विकल्प से यहां साधक के मन का शुद्ध विकल्प अभिप्रेत है।

वायुद्वयस्य संघट्टादन्तर्वा बहिरन्ततः।
योगी समत्व विज्ञान समुद्गमन भाजनम्॥ ६३॥

(अन्वय- अन्तः बहिः वा वायुद्वयस्य संघट्टात् अन्ततः योगी समत्व विज्ञानेन समुद्गमन भाजनम् (परम सिद्धि भाक्भवेत्)॥

हृदय और बाह्य द्वादशान्त में प्राण और अपानरूप दो वायुओं के एक स्थान पर

मिलने से अर्थात् जहां प्राण और अपानरूप वायुओं के मेल की अलग से प्रतीति नहीं होती, अन्ततः योगी में समत्व भावना का विकास हो जाता है और साथ ही संसार के सभी पदार्थों को भी वह उस रहस्यमय परम तत्त्व में लीन कर लेता है अर्थात् उन्हें अपने से अभिन्न रूप से देखने लगता है।

संघट्टात्—जब दो प्राणवायु एक स्थान पर मिलते हैं। अर्थात् प्राणवायु का आरम्भ अपानवायु का अन्तिम बिन्दु है, इसी तरह अपानवायु का आरम्भ प्राणवायु का अन्तिम बिन्दु है। सांस लेने की प्रक्रिया का आरम्भ सांस छोड़ने की प्रक्रिया का चरम बिन्दु है। एक स्थान पर इन दोनों के मेल को ही संघट्ट कहते हैं।

अन्तः बहिः वा—कई टीकाकारों ने 'वा' शब्द को 'च' के अर्थ में लिया है पर स्वामीजी महाराजने ऐसा न करके 'वा' को अथवा के अर्थ में लेकर "अन्तः वहिर्वा" का अर्थ हृदय द्वादशान्त अथवा बाह्य द्वादशान्त किया है। "अन्तः" का अर्थ दो भ्रकुटियों के बीच का स्थान या हृदय है, "बहिः" का अर्थ बाहरी द्वादशान्त है।

अन्ततः - अन्त में जब दोनों प्राणवायु रुक जाते हैं, तो योगी समता हष्टि के विकास से परमसिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

भाजनम् - योग्य बनता है।

यह आणवोपाय की धारणा है।

सर्वं जगत् स्वदेहं वा स्वानन्दभरितं स्मरेत्।
युगपत् स्वामृतेनैव परानन्दमयो भवेत्॥ ६४॥

(अन्वय-सर्वं जगत् स्वदेहं वा स्वानन्दभरितं स्मरेत्। (अनया भावनया साधकः) युगपत् स्वामृतेनैव परानन्दमयो भवेत्॥)

साधक इस तरह की भावना करे कि यह सारा संसार अथवा यह अपना शरीर अपने स्वाभाविक आनन्द से परिपूर्ण है। इस भावना के अभ्यास से वह साधक एक साथ अपनी अमृतपूर्ण आनन्दमयी अवस्था में प्रवेश पाकर कृतकृत्य हो जाता है॥

सर्वं जगत् स्वदेहं वा—इस सारे ससार को अथवा अपने शरीर को ले लो और जान लो कि यह स्वात्मानन्दसे पूर्ण है। या यह बात मानलो कि यह सारा विश्व आपकी अपनी आनन्दशक्ति से भरा हुआ है, या आपकी अपनी देह स्वाभाविक आनन्द से परिपूर्ण है।

भरितम्—परिपूर्ण है। हमें यह मानना है कि सारा विश्व या यह शरीर परमशिव की आनन्दावस्था से पहिले से ही पूर्ण है। उसी आनन्दातिरेकसे साधक द्रवीभूत होता है और उस परमानन्द के साथ एकाकार हो जाता है।

यह शाक्तोपाय की धारणा है।

६२वें श्लोक में "चिन्मयं" कहकर यह सिद्ध किया कि यह सारा विश्व 'प्रकाश' से पूर्ण है और उपरोक्त श्लोक में "स्वानन्दभरितं" कह कर यह स्पष्ट किया कि यह सारा विश्व 'विमर्श' से भी पूर्ण है। यह प्रकाश विमर्श रूप प्रक्रिया युगपत् है।

यह शाक्तोपाय की धारणा है॥

कुहनेन प्रयोगेण सद्य एव मृगेक्षणे।
समुदेति महानन्दो येन तत्त्वं प्रकाशते॥ ६५॥

(अन्वय- हे मृगेक्षणे! कुहनेन प्रयोगेण सद्य एव महानन्दा, समुदेति, येन तत्त्वं प्रकाशते॥)

हे मृगनयनी पार्वती! जादुई तरीके से अपनी कांख में किसी दूसरे को दबाने से, दबोचा गया व्यक्ति जैसे जोर जोर से हंसता है किसी सीमा के बगैर। इसी तरह की अलौकिक आनन्द से पूर्ण झूठी दशाओं पर अपनी भावना को केन्द्रित करने वाले योगी के मनमें उसी समय महानन्द उत्पन्न होता है जिससे वह आनन्द की चरमसीमा का भागीदार बनता है॥

कुहन प्रयोग—यह एक प्रकार का खेल है जिसमें कोई कलाविद् किसी दूसरे को अपनी कांख में दबोच लेता है। जिसके परिणाम स्वरूप वह व्यक्ति ठहाके मारता है। यहां हमें इस बात की ओर ध्यान देना है कि इस अट्टहास का उत्पत्ति स्थान अथवा आगम वया है? यदि यह हंसी वास्तव में स्वानन्दपूर्ण है तो इसको हम क्यों दुतकारते हैं? यहां यह ध्यान देने की बात है कि यह कुछ अगम्य है जो हमें हंसाता है अन्यथा इस प्रकार के दवोचने से हमें परेशान होना चाहिये था या हमें रोना चाहिए था पर हम रोते नही, व्याकुल होते नही, अपितु हंसते है। हमें हंसने के आगम की तह में तत्काल जाना चाहिए।

येन तत्त्वं प्रकाशते—जिससे महान आनन्द की चरम अवस्था प्रस्फुटित होती है और स्वरूप लाभ की प्राप्ति होती है।

यह शाक्तोपाय धारणा है। शाक्तोपाय में मंत्रउच्चारण तथा श्वासोच्छ्वास प्रक्रिया का अभाव होता है। केवल उस ठहाके के स्त्रोत का निरीक्षण करना है॥

श्री तन्त्रालोक विवेके श्री जयरथाचार्यपादैः स्तुताः योनि समद्भूताः जयाद्याः रुद्राः

भाषानुवादक :
प्रो० मखनलाल कुक़िलू

(गतांक से आगे)

श्री तन्त्रालोक विवेक के द्वादश आह्निक से सम्बद्ध "जयद" नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर "ट"

अमृतात्मकार्ध चन्द्र प्रगुणाभरणोऽध्वमण्डलं निखिलम्।
विश्रमयन्निज संविदि जयदोऽस्तु सदा सतां जयदः॥

अमृतात्मक=अमृतस्वरूप, अर्धचन्द्र=अर्धगोलाकार चन्द्र, **प्रगुणाभरण**=व्यापक आभूषण, निखिलं **अध्वमण्डलं**=पद, मन्त्र और वर्णरूप क्रियाशक्तिमय तीन प्रकार का कालाध्वा, तथा भुवन, तत्त्व और कलारूप तीन प्रकार का देशाध्वा एवं छः प्रकार का सारा अध्वमण्डल, जिसे षडध्वा भी कहते हैं, निज **संविदि**=अपनी संवित् में, **जयदोऽस्तु**=विजय प्रदान करने वाला होवे, **जयदः**= जयद नामक रुद्र।

अमृतस्वरूप अर्धगोलाकार चन्द्रमा जिसके मस्तक का व्यापक आभूषण है, जो अपने संविन्मय शरीर में सुव्यवस्थित है, ऐसा "जयद" नामक रुद्र सत्पुरुषों को विजय प्रदान कराने वाला होवे॥

अध्वमण्डल—कालाध्वा और देशाध्वारूपी क्रमशः तीन-तीन प्रकार का अध्वा।

निज संविदि विश्रमयन्—अर्थात् जिस तरह से यह सारा अध्वमण्डल संवित् तत्त्व में स्थित है उसी प्रकार से आन्तरिक शरीर रचना के अंगों में भी स्थित है। यह इस शक्ति की महानता है कि अतिरिक्त दीखनेपर भी अभिन्न दीखती है। कहा भी है कि सारा अध्वमण्डल चिन्मात्र में व्यवस्थित है जो उसमें है वही है जो उससे भिन्न है वह आकाश पुष्प सा है। विज्ञानभैरव तन्त्र में भी कहा है-

अस्य विश्वस्य सर्वस्य पर्यन्तेषु समन्ततः।
अध्वप्रक्रियया तत्त्वं शैवं ध्यात्वा महोदयः॥

इस षडध्वमय जगत् का स्वरूप शिव के स्वरूप को छोड़कर दूसरा कुछ भी नहीं है, अतः जगत् के स्वरूप में ही शिव का ध्यान करने वाले योगी का महान् उदय हो जाता है।

इस श्लोक में दो बार जयद शब्द का प्रयोग हुआ है। एक का अर्थ जयद नामक रुद्र है और दूसरे का अर्थ विजय प्रदान करने वाला।

इस 'जयद नामक' रुद्र का मन्त्राक्षर "ट" है। इस मन्त्राक्षर की उपासना से समस्त जगत्को शैव महाभाव से अलंकृत करके साधक जीवन्मुक्त होता है॥

श्री तन्त्रालोक विवेक के त्रयोदश आह्निक से सम्बद्ध "जयवर्धन" नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर "ठ"–

जयवर्धनः सुखर्द्धिं वर्धयतात्पूर्णचन्द्र विशदगतिः।
आप्याययति जगत् यः स्वशक्तिपातामृतासारैः॥

शक्तिपात= जब एक सच्चे साधक को परमेश्वर प्रकाश की निर्मल रश्मियां सारे मलों का अन्धकार मिटाती है और उसे पूरी तरहसे धन्य बनादेती है, जिससे उस नैर्मल्य में सारा संसार उसे दर्पण की तरह प्रतिबिम्बित होता है, उसी को शक्तिपात कहते हैं। शक्तिपात का उद्धेश्य शिवतापत्तिमात्र है। **सुखर्द्धि**=सुख, ऋद्धियां और सिद्धियां।

पूर्ण चन्द्रविशदगतिः=पूनम के चांद की तरह जिसकी रश्मियों का प्रसार स्वच्छ है। **आप्याययति**=आप्यायन करता है, तर्पण करता है अर्थात् अमृत वर्षा से सारे मलों की कालिमा को मिटाता है।

निजशक्तिपातरूपी अमृत किरणों की वर्षा से जो संपूर्ण विश्व का आप्यायन करता है, वही पूर्ण चन्द्रमा की नाई निर्मल गतिवाला जयवर्धन नामक रुद्र सुख संपत्ति की वृद्धि करें।

इस जयवर्धन नामक रुद्र का मन्त्राक्षर "ठ" है। इस की उपासना से साधक ईश्वरीय शक्तिपात का अयत्नसिद्धभागी होता है॥

श्री तन्त्रालोक विवेक के चतुर्दश आह्निक से सम्बद्ध 'बलरुद्र' की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर "ड"–

यो योगिनी प्रियतया तिरोहिति व्यपगतिक्रमं जगताम्।
प्रबलीकरोति बलतो बलाय तस्मै बलिंयामः॥

प्रबली करोति=शक्तिशाली बनाता है, **बलतो**=हठपूर्वक, **बलाय**–बलरुद्र को **बलिंयामः**=बलिहारी होते हैं, **तिरोहिति**–तिरोभाव या तिरोधानकी **व्यपगतिक्रमं**= अपसरणक्रिया को, **जगतां**=लोगों की, **योगिनीप्रियतया**=योगिनी शक्तियों का अभीष्ट होने से, **यः**–जो बलरुद्र संसारियों की निग्रह क्रिया का हठपूर्वक अपसरण करता है, उस बलरुद्र पर हम न्योछावर होते हैं॥

तिरोहिति–तिरोधान या तिरोभाव कहा है– "सर्वो विकल्पः संसारस्तत्रैव चास्य दन्दह्यमानत्वं नाम तिरोभावः" अर्थात् सारे विकल्प समूह का ही नाम संसार है, इस आग के गोले रूप विकल्प समूह में प्रज्वलनशीलता या जलने के स्वभाव को ही तिरोहिति या

तिरोभाव कहा जाता है। परमेश्वर के पांच प्रकार के कर्म सर्व प्रसिद्ध हैं। सृष्टि स्थिति संहार तथा तेरहवें आह्निक में व्याख्यात अनुग्रह कृत्य पर प्रकाश डाल कर अब इस चौदहवें आह्निक में अवशिष्ट पंचम कृत्य निग्रह या तिरोधान का उल्लेख तथा उसका निवारण बलरुद्रनामक रुद्र की स्तुति द्वारा टीकाकार आचार्य जयरथ ने किया। क्योंकि बलरुद्र ही संसार के जीवों का निग्रह करते हैं तथा उसका निवारण भी करते हैं। वस्तुतया तिरोधान में परमेश्वर की इच्छा ही प्रमुख और मूल कारण है।

इस रुद्र का मन्त्राक्षर "ड" है, जिसके मनन व ध्यान से निग्रह का विलय होता है।

श्री तन्त्रालोक विवेक के पञ्चदश आह्निक से सम्बद्ध 'अतिबल' नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर "ढ"

यः परमेश सपर्या क्रियोपदेशाङ्कुशेन भवकरिणम्।
कृतावान नतिबलं अतिबलमस्मि नतः फणभृदाभरणम्॥

भवकरिणं–संसाररूपी बलशाली हाथी को, **अंकुशेन**=कीलसा मोटा उपकरण जिसे हाथी के सिर पर ठोंकने से हाथी को वश में किया जाता है, **परमेश**=परमशिव की, **सपर्याक्रिया**=पूजा क्रिया, नति **कृतवान**=वश में किया, **बलं**=बलपूर्वक, **फणभृदा-भरणं**=सापों को आभूषणों के रूप में धारण करने वाला, **अतिबलमस्मि नतः**=अतिबल नामक रुद्र को प्रणाम करता हूँ,

जिस अतिबल नामक रुद्र ने परमेश्वर की पूजाक्रिया आदि उपदेशरूपी अंकुश से संसाररूपी बलशाली हाथी को वश में किया, उस सर्पभूषण अतिबलनामक रुद्र को मैं प्रणाम करता हूँ॥

इस रुद्र का मन्त्राक्षर "ढ" है। जिसके ध्यान व चिन्तन से संसाररूपी हाथी को वश में किया जा सकता है॥

श्री तन्त्रालोक विवेक के षोडश आह्निक से सम्बद्ध "बलभद्र" नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर "ण"।

प्रणमामि निखिल पाश प्रवाह संभेद बलभद्रम्।
बलभद्रं प्राणाश्वप्रचार चातुर्य पूर्ण बलम्॥

निखिल पाश प्रवाह-अनेक प्रकार के पाशों से सारा संसार ग्रस्त है। इन पाशों का प्रवाह इतना दुस्तर है कि सारे जीव इसमें बहने को विवश हैं।

संभेद बलभद्रम्–संगम संभेद के नाम से भी ज्ञात है। इस प्राणपानरूपी प्रवाह के संगम को भेदने में बलभद्र नामक रुद्र सक्षम है।

दूसरी पङ्क्ति में आये बलभद्र का तात्पर्य है बल–शक्तिशाली, भद्र–कल्याणकारी।

प्राण और अपानरूपी घोड़े प्रचार-अपने मार्ग पर चलने की, पूर्णबल–पूरी ताकत रखते हैं अर्थात् अपने सन्मार्ग से इधर-उधर कभी हटते नहीं है। प्राणापान रूपी घोड़े इसी अलौकिक नियन्ता के नियन्त्रण में रहकर ध्येयसिद्धि प्राप्त करते हैं॥

मैं उस बलभद्र को प्रणाम करता हूँ, जो कल्याणकारी व शक्तिशाली है, जो प्राण और अपान रूप स्वाभाविक (वायु) प्रवाह को बलपूर्वक नियन्त्रित कर सारे संसार को जीवन प्रदान करते हैं, और जो विविध सांसारिक पाशों के बहाव में बहने को विवश बने सारे प्राणिवर्ग के प्राणप्रवाह के संगम को भेदने में अत्यन्त दक्ष है॥

इस रुद्र का मन्त्राक्षर "ण" है। इसका चिन्तन व मनन साधक के लिए प्राणापान साधना का मार्ग प्रशस्त करता है।

प्राणरूपी दिन में तुरीय रूप आकृति के तीन निर्विकल्प स्थान लक्ष्य करने योग्य हैं। वे हृदय, तालु और बाह्य–द्वादशान्त में स्थित होते हैं। जब प्राणरूपी दिन में यह तुरीय रूप आकृति हृदय के स्थान विशेष से प्रस्थान करती है तो उस समय–विशेष को प्रभात कालीन सन्ध्या कहते हैं। जब यह तालु के स्थान में से निकलती है तो उस समय–विशेष को मध्याह्नकालीन सन्ध्या और जब यह बाह्य द्वादशान्त के स्थान को पहुंचती है तो उस समय–विशेष को सायंकालीन सन्ध्या कहते हैं॥

स्वामी लक्ष्मण जू महाराज

THE BRAHMA KAMAL (ब्रह्म कमल)

The king of all the Himalayan flowers' known as Brahma Kamal or Hem Kamal or the Snow Lotus, is a very rare flower. Its botanical name is Saussurea Obvallata.

The flower has a height of 15 to 40 cms on its stem and is as big as a saucer. It's bluish in color.

The flower grows between Pakistan to southwest China at an altitude of 3600 to 4600 meters from mean sea level. It grows in between rocks.

The flower blooms between July and September.

The flower has great significance especially because it is the flower of Lord Brahma. Worshipping with this flower is considered very auspicious. Since ancient times it has inspired people to offer it to the Gods. The most favourable place in India for blooming is higher hills tracts of Uttaranchal.

(Courtesy Shri C.L. Tiku (Deharadun Uttaranchal)

नारद ! इसी प्रकार मट्ठेके समुद्रसे आगे उससे बहुत लम्बा-चौड़ा विस्तारवाला पुष्करद्वीप है। यह द्वीप शाकद्वीपसे दूने विस्तारमें है। अपने-जैसे विस्तारवाले मीठे जलके समुद्रद्वारा यह चारों ओरसे घिरा है। इस द्वीपमें अत्यन्त प्रकाशमान एक कमल है। इसकी प्रभूत पँखुड़ियाँ ऐसी चमकती हैं, मानो आगकी लपटें हों। लाखों स्वर्णमय पत्र इस कमलकी शोभा बढ़ा रहे हैं। अखिल जगत्‌की सृष्टि करनेका विचार उत्पन्न होनेपर संसारके एकमात्र शासक श्रीहरिने महाभाग ब्रह्माके रहनेके लिये इसी कमलकी स्थापना की है। इस पुष्करद्वीपमें मानसोत्तर नामका यह एक ही पर्वत है। पूर्व और पश्चिमके वर्षोंकी सीमा बताना इसका मुख्य उद्देश्य है। यह दस हजार योजन ऊँचा और इतना ही विस्तृत है। इसकी चार दिशाओंमे चार पुरियाँ हैं। इन पुरियोंमें इन्द्र आदि लोकपाल रहते हैं। इसके ऊपरसे होते हुए सूर्य सुमेरुगिरिकी प्रदक्षिणा करते हैं। सूर्यके रथका चक्का संवत्सरका प्रतीक है। देवयान और पितृयान मार्गसे यह आगे बढ़ता है। प्रियव्रतके पुत्र वीतिहोत्र यहाँ के राजा थे। उन्होंने इस द्वीपको दो भागों में बाँट दिया। उसके दो पुत्र थे। दोनोंको क्रमशः दो वर्षों में रहनेकी आज्ञा दे दी। पुत्रोंके नाम हैं- रमण और धातकी। ये दो राजकुमार दोनों वर्षों में शासन करते हैं। स्वयं वीतिहोत्र अपने बड़े भाइयों के समान भगवान् श्रीहरिके परम उपासक बन गये। इस लोकमें रहनेवाले पुरुष ब्रह्माको साक्षात् परब्रह्म परमेश्वरका स्वरूप मानकर उनकी उपासना करते हैं। सकाम कर्मके द्वारा श्रीहरिकी आराधना करते हुए वे यों कहते हैं-'जो कर्ममय ब्रह्मके साक्षात् विग्रह, जगत्पूज्य एवं अद्वैत हैं तथा जिनका स्वरूप परम शान्त है, उन भगवान् ब्रह्माको हमारा नमस्कार है।'

—संक्षिप्त देवीभागवत अ. १२-१३

सुश्री सी० एल० तिकू (देहरादून, उत्तरांचल) के सौजन्य से

ॐ नमः शिवाय

शैवदर्शन के वातायन से

शैवदृष्टि में अभिवादन का औचित्य

प्रो० नीलकंठ गुर्टू

वंदन, अभिवादन, नमन, स्मरण, प्रध्यान इत्यादि बहुतेरे शब्द समानार्थक हैं और किसी भी अतिशयशाली, अतिमनभावन एवं नमस्करणीय देवता को वन्दन नमस्कार करने का अर्थ द्योतित करते हैं। आचार्य अभिनव ने अपनी प्रत्यभिज्ञाटीकाओं में वन्दन, अभिवादन इत्यादि नमस्कार वाची शब्दों की गहरी मीमांसा करके यह उपदेश दिया है कि ये सारे नमस्कारवाची शब्द ईश्वरीय उत्कर्ष एवं महत्व की अभिव्यंजना करने के कारण अवश्य लोकोत्तर महत्व से भरपूर हैं।

वन्दन एवं अभिवादन इन दोनों नमस्कारवाची शब्दों का मूल धातु 'वदि' है। अभिवादन करना और स्तुति करना इस 'वदि' धातु के दो अर्थ हैं। अभिवादन करने से नमस्कार करने की वेला पर अपनी काया के मुख्य आठ अङ्गों के द्वारा एक साथ ही अपने मनभावन आराध्यदेव को अपने नमस्कार का विषय बनाने, और स्तुति करने से तत्काल ही निजी आन्तरिक विमर्श में उसी अपने मनचाहे आराध्यदेव की लोकोत्तर उत्कर्षशालिता का अनुसन्धान करने का अभिप्राय समझना चाहिए, इन दोनों के साथ वाणी के द्वारा नमस्कार शब्द के गम्भीर उद्घोष को मिलाकर इस प्रणाम की प्रक्रिया के तीनों पक्ष पूरे हो जाते हैं।

इस संदर्भ में आचार्य अभिनवगुप्तपाद का मानना यह है कि प्रस्तुत पराद्वैतसंप्रदाय में जो यह काया, वाणी एवं मन इन तीनों के द्वारा एक साथ ही, एक ही मनोनीत परमेश्वर (नमस्करणीय देवता) के साथ नित्य संपृक्त बने रहने के लक्षणों वाली प्रह्वता (परिपूर्ण तन्मयीभाव की अवस्था) है उसी का दूसरा अर्थ नमस्कार है, किसी भी प्रामाणिक महापुरुष के लिए उस प्रकार की प्रह्वता का प्रस्तुतिकरण केवल उसी सूरत में औचित्यपूर्ण लगता है जब कि वह अपने नमस्करणीय आराध्य में हर प्रकार से और सबसे अधिक उत्कर्ष की विद्यमानता देख रहा हो, अन्यथा (नमस्कार करने के अवसरों पर) इस अवश्यपालनीय जुगत (अपने आराध्यदेव में समूचे जड़-चेतनमय विश्व की अपेक्षा अधिक (असीम) उत्कर्ष को माप लेने की) जुगत का विमर्श करने के विना, सब देवों में से उत्कृष्ट परमेश्वर (परमशिव) को सर्वथा भूलकर, दूसरे किसी ओछे स्तर के देवाभास (कोई ओछा गौण देवता) को भी धन इत्यादि मिलने के लोभ से) नमस्कार करने पर उतारू

व्यक्ति, दूसरे संसारी पशुजनों के साथ ही दुर्गति में पड़ा रहता है। फलतः हरेक नमस्कार करने के अवसर पर अपने नमस्करणीय देवता में पाए जाने वाले सर्वतोमुखी उत्कर्ष का विमर्श भी साथ साथ करते रहना अति आवश्यक मानना चाहिए।

इसके अतिरिक्त सारे ईश्वरीय उत्कर्षों की अभिव्यंजना करने वाले 'जयति' वन्दे इत्यादि शब्दों का अनुवेध भी इस नमस्कार की प्रक्रिया में अवश्य करते रहना चाहिए।

'जयति' - इस नमस्कारवाचक शब्द का वैखरी द्वारा स्पष्ट उच्चारण किए जाने पर भी अगर कोई नमस्कर्ता उतने अवर्णनीय ईश्वरीय उत्कर्ष से विराजमान महेश्वर के प्रति प्रह्वताभाव में परिपूर्ण आत्मसमर्पण न करके इस दिशा में तटस्थता का ही आचरण करता रहे तो वह प्रचुर मात्रा में अपने आपका ही अनुपकार कर बैठता है। अतः इस नमस्कार करने की प्रक्रिया में ईश्वरीय उत्कर्ष विशेष के द्वारा आक्षेप अर्थात् अध्याहार किया गया नमस्कार भी अवश्य देवता को अर्पण करना चाहिए। फलतः ऐसी नमस्कार की जुगत के द्वारा जय शब्द या नमस्कार शब्द दोनों में से किसी एक का ही उपक्रम कर लेने पर दूसरे के अर्थ का स्वयं हीं अध्याहार होना भी अवश्य अङ्गीकार करना चाहिए।

वन्दन, नमन, स्मरण, प्रध्यान, अभिवादन इत्यादि दूसरे बहुतेरे शब्द भी 'नमस्कार' या 'जयति' इन्हीं नमस्कारवाची शब्दों के समानार्थक होने के कारण इसी सरणि का अनुसरण करते हैं। तात्पर्य यह कि इनमें से किसी एक का भी उद्घोष किए जाने पर सबों के अर्थ का अध्याहार स्वयं ही हो जाता है

फलतः आचार्यवर्य अभिनवगुप्तपाद यह उपदेश देते हैं कि प्रत्यभिज्ञा - संप्रदाय में नमस्क्रिया का भी अपना एक विशेष उत्कर्ष है जिसको नमस्कार करने की वेलाओं को अवश्य ध्यान में रखने की आवश्यकता होती है। वास्तव में नमस्कार करने की इतिकर्तव्यता भी परमेश्वर की अर्चना का एक मुख्य अंग है। यह नमस्क्रिया साधक को निजी अर्चनीय इष्टदेव के साथ नित्य-संपृक्त रूप में अवस्थित रहने की क्षमता प्रदान करती है। अभिवादन से इस नमस्कार-प्रक्रिया की बहिरंग साधन-सम्पत्ति - कायिक, वाचिक एवं मानसिक और स्तुति से अंतरंग विमर्शमयी साधक संपत्ति पूरी हो जाती है और साधक का अंतस् किसी दिव्य आलोक से प्रकाशमान हो जाता है।

तुलसी–प्रकृति की अपूर्व देन

प्रो० मखनलाल कुकिलू

पत्रं पष्पं फलं तोयं ये मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतं अश्नामि प्रयतात्मतः।। (गीताजी ९–२६)

यदि कोई श्रीकृष्ण भावना भावित होकर उन्हें पत्र, फूल, फल, या जल देता है तो वे उसे सहर्ष स्वीकार करते हैं॥

इस श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने 'पत्रं' शब्द कहकर हमें यह समझाया कि श्रीकृष्ण को जो स्वयं नारायण ही हैं, तुलसी का पत्ता अत्यन्त प्रिय है। पत्र शब्द से तुलसी के पत्ते की ओर ही उन्होंने संकेत किया है। क्योंकि तुलसी का दूसरा नाम "विष्णुप्रिया" है। श्रीकृष्ण तुलसी के पत्ते के विना अन्य किसी भी पत्ते की भेंट लेने को तैयार नहीं होते अतः अपने घर के किसी भी रिक्तस्थान में या पास के आंगन में तुलसी का पौधा लगाना वाञ्छनीय है। इस प्रकार यह साधारणसी भेंट आप भगवान को सदा सर्वत्र दे सकोगे।

स्कन्द पुराण में कहा है कि :–

तुलसीं ये विचिन्वन्ति धन्यास्ते करपल्लवाः।

अर्थात् जो हाथ तुलसी को पूजा के लिए चुनते हैं वे धन्य हैं। स्मरण रहे कि तुलसी का एक एक पत्ता न तोड़ कर पत्तियों के समेत अगले हिस्से को तोड़ना चाहिए। क्योंकि तुलसीमञ्जरी सब फूलोंसे उत्तम मानी जाती है। उस मञ्जरी में पत्तियों का रहना आवश्यक है। तुलसी पौधे को विना हिलाये नीचे दिये मन्त्र से भक्ति के साथ तोड़ेः–

तुलस्यमृतजन्मासि सदात्वं केशवप्रिया।
चिनोमि केशवस्यार्थं वरदा भव शोभने।।
त्वदङ्गसम्भवैः पत्रैः पूजयामि यथा हरिम्।
तथा कुरु पवित्राङ्गि! कलौ मलविनाशिनि।।

इस प्रकार तुलसी दलों के चुनने से पूजा का फल लाख गुना बढ़ जाता है। पद्मपुराण में इसी तथ्य को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है।

मन्त्रेणानेन यः कुर्यात् गृहीत्वा तुलसीदलम्।
पूजनं वासुदेवस्य लक्षपूजा फलं लभेत्।।

पुराणों में कहा है कि महान् तपस्वी सन्तानहीन राजा धर्मध्वज ने कठोर तपस्या के पश्चात् महालक्ष्मी को पुत्री के रूप में पाया और उनके आदेशानुसार पुत्री का नाम 'तुलसी' रखा। अतः तुलसी महालक्ष्मी का ही दूसरा रूप है जिसे हर मन्दिर के प्रांगण में हर घर के

चौखटे पर हर राजभवन में पूजा के लिए लिपेपुते स्थान पर सजाया जाता है। तुलसी को सामान्य पौधा न समझकर भक्ति भाव से नहाधोकर उसकी अर्चना करनी चाहिए। विष्णुप्रिया होने से तुलसी के पत्ते का सालिग्राम पूजन में विशेष महत्व है इसे चरणामृत के आठ अंगों में एक अंग माना गया है। कहा है :–

उदकं, चन्दनं, चक्रं, शंङ्ख च तुलसी दलम्।
घण्टा शिला ताम्रपात्रं अष्टांगं चरणामृतम्।।

ब्रह्मपुराण में कहा है कि :–

अभिन्नपत्रां हरितां हृद्यमञ्जरि संयुताम्।
क्षीरोदार्णवसंभूतां तुलसीं दापयेत् हरिम्।।

हरी पत्तों वाली, मनभावनी, तुलसी मञ्जरी को, जो क्षीर सागर से प्रकट हुई है, विष्णुपूजन में विष्णु के लिए प्रयोग में लाना चाहिए। तुलसी की महिमा अनन्त है। तुलसी सर्वसौभाग्यवर्धिनी तथा आधिव्याधिहरा है। तुलसी माला गले में धारण कर प्राण त्याग करने वाला भक्त यद्यपि कोटि कोटि पापों से कलङ्कित भी हो, उसका महाकाल भी कुछ बिगाड़ नहीं सकता है। कहा भी है–

तुलसी मालया युक्तो, यस्तु प्राणान् विमुञ्चति।
यमोऽपि नेक्षितुं शक्तः युक्तं पापशतैरपि।।

श्री गरुड़ पुराण के प्रेतकल्प में कहा है कि मृत्यु के समय जिसके मुख में तुलसी हो तथा जिसके सिरहाने पर दायीं तरफ मिट्टी के लौंदे में तुलसी मञ्जरी रखी हो वह विष्णुलोक में आदर से पूजा जाता है और यमदूतों के भय से मुक्त होता है।

स्मरण रहे तुलसी से गणेश की पूजा नहीं करनी चाहिए, कहा है :– "न तुलस्या गणाधिपम्"। पर शंकर को हरिहररूप मानकर तुलसी से पूजा जा सकता है। कहा हः–

तुलसी मञ्जरीभिर्यः
कुर्यात् हरिहरार्चनम्।
नस गर्भ गृहं याति
मुक्ति भागी न संशयः।। (आह्निक सूत्रावली)

तुलसी मञ्जरी के सामने नंगे पांव, नहा धोकर प्रणाम करके यह प्रार्थना करनी चाहिएः –

देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वं
अर्चितासि मुनीश्वरैः।

नमो नमस्ते तुलसि!
पापं हर हरिप्रिये! ॥

जिस नैवेद्य के साथ तुलसी का पत्र डाला जाये वह नैवेद्य सर्वोत्तम बन जाता है। कहा है :–

नैवेद्यमन्नं तुलसी विमिश्रम्॥

पूजा के पश्चात् तुलसी ग्रहण करते समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिए।

पूजनानन्तरं विष्णोरर्पितं तुलसीदलम्।
भक्षये देहशुद्धयर्थं चान्द्रायण शताधिकम्॥

अर्थात् पूजा के पश्चात् भगवान् को अर्पित किया तुलसी का पत्ता अपने शरीर की शुद्धि के लिए मैं खाता हूँ। इसका फल सैकड़ों चान्द्रायण व्रतों से भी अधिक है।

आयुर्वेद में भी तुलसी को सर्वरोगहरा के नामसे पुकारा गया है। तुलसी का प्रयोग छाती के रोग, उदरविकारसम्बन्धी रोग तथा पीलिया और चर्म रोगों के लिए महान् लाभदायक है।

इस बात का ध्यान रहे कि तुलसी दलों का चयन अधोलिखित तिथियों वारों तथा योगों पर नहीं करना चाहिए :–

वैधृति और व्यतिपात योग पर, रविवार, मंगलवार, शुक्रवार इन तीन वारों में श्राद्ध के दिन, द्वादशी, अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति, जन्म अशौच तथा मरण अशौच, और सन्ध्या के समय। पर पिण्डदान के समय पिण्डों पर तुलसी को चढ़ाया जा सकता है॥

इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि राम और श्याम नामक तुलसी का सेवन करने वाला परम वैष्णव होना चाहिए। राम नाम की तुलसी सब्ज रंग की होती है और श्याम वर्ण की तुलसी श्याम रंग की होती है। अपने घर में भी जो तुलसी की पूजा करे वह वैष्णव होना आवश्यक है।

पत्र इत्यादि चढ़ाते समय स्मरण रहे कि –

पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं नेष्टमधोमखम्।
यथोत्पन्नं तथा देयं बिल्वपत्रमधोमुखम्॥

अर्थात् तुलसी का पत्ता या कोई भी फूल या कोई भी फल नीचा मुख करके देवता पर नहीं चढ़ाना चाहिए। वे जैसे उत्पन्न होते हैं उन्हें वैसे ही चढ़ाना चाहिए। केवल बिल्वपत्र को ही उल्टा करके डण्डी तोड़कर लगाना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बिल्वपत्र सदा तीन तीन पत्तियों का होना चाहिए। पत्तियों में कहीं छेद या सुराख नहीं होना चाहिए, ऐसे बिल्वपत्र के चढ़ाने से अमंगल होता है॥

ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Head Office :
Ishber Nishat, P. O. Brain,
Srinagar - 190021

Administrative Office:
2, Mohinder Nagar,
Canal Road, Jammu - 180016
Tel. : 555755

Delhi Kendra :
R- 5 Pocket D
Sarita Vihar,
New Delhi - 110044
Tel. : 6958308

Dear Brothers and Sisters

Jai Gurudeva

This is the first time that I am approaching you, as the president of the Delhi chapter of the Ishwar Ashram Trust, through 'Malini' the mouthpiece of the trust founded by Sri Ishwar Swaroop Swami Lakshman Joo Maharaj.

I feel the approach must be positive and I assure you that my approach shall always be positive, by the grace of my Satguru Dev. I hope that you will always reciprocate by showing a positive response. I would like to convey my sincere thanks to you for patronizing the trust by way of monetary and moral assistance. I also convey my thanks to my predecessor Capt. M K Kachroo and his team for delivering the best. But, as there is always scope for improvement and expansion, I would like to seek your help, guidance and opinion in different areas that the trust intends to take up in the near future.

Priorities for the near future include:–

1. Website development for our trust.

The proposed features of this site are:–

a) Shri Ishwar Swaroop Swami Lakshman Joo Maharaj, his life history
b) History of Kashmir Shaivism
c) Photographs - Relevant
d) Ashram and its activities
e) Spiritual experiences.
f) A brief resume of Sunday Classes held at Shrinagar Ashram.
g) Present members of the Ashram.
h) Online membership
i) Downloads of publications.
j) Details of publications.

k) Guest book

l) Downloads of audio and video recordings

2. Continuation of construction work of Sarita Vihar Ashram.

Till date only the structure of the Ashram complex has come up and still a lot needs to be done. We intend to construct a "Sat sang" hall at the ground floor wherein a beautiful statue of our 'Guru Dev' shall be installed. This hall shall be decorated with the latest architectural techniques.

3. Amriteshavar Bhairav Temple

The Temple in front of the complex is to be completed and we shall try our best to make it one of the best temples of the city.

4. Up gradation of the terrace

5. Plantation in and around the complex

6. Development of inner paths

7. Development of Library with latest publications.

8. Inauguration of a developed medical centre for financially weaker sections

Dear Brothers and Sisters, I would therefore request you to kindly assist us in our efforts by sparing a little time out of your preoccupied schedules to give us your valuable feedback and suggestions in writing or by contacting personally or over the telephone. I would also request you to help us by providing material for the development of the website. Anybody having any kind of material describing the features of our beloved 'Guru Dev' from his childhood to the nirvana stage and also regarding his parents, Guru parampara, important guests and personalities, his photographs, audio and video cassettes, lectures, Satsang, speeches etc, in short anything that will help us in developing the proposed website.

I am quite sure that with the blessings of our Sad Guru Maharaj and by your guidance, assistance and valuable suggestions we will be successful in our endeavour.

My humble submission to all the disciples is to contribute for the above said glorious cause and for the construction purpose with an open heart and mind.

With warm regards,

Yours sincerely

Sd/-

Avtar Krishen Ganjoo
President, Ishwar Ashram Bhawan
Delhi Chapter : Sarita Vihar, New Delhi 110 044
Tel. : (R) 7216507, 7435523, (O) 7453649, 7435930

ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Srinagar Ashram:
Ishber Nishat.
P.O. Brain,
Srinagar (Kashmir) - 190 021
Tel. : 0194-461657

Jammu Ashram:
2, Mohinder Nagar,
Canal Road,
Jammu (Tawi) - 180 002
Tel. : 0191-553179, 555755

Delhi Ashram:
R-5, Pocket 'D',
Sarita Vihar,
New Delhi - 110 004
Tel. : 011-6958308, 6943307

With the Blessings of our beloved Gurudev Ishwar Swarup Swami Lakshman Joo Maharaj, Ishwar Ashram Trust, Delhi Chapter is organizing a performance by Shri Anup Jalota, a maestro in vocal rendering of Bhajans on the evening of 1st October, 2001 at Siri Fort Auditorium, Asiad Village, New Delhi. This event is being organised to raise funds for the remaining construction work of Ishwar Bhawan and Amriteshwar Bairav Mandir at Sarita Vihar, New Delhi.

The Anup Jalota Musical Concert will be preceded by a briefing on Ishwar Ashram.Trust activities and future programs, talk by eminent speakers on Kashmir Shaivism, launching of an Ishwar Ashram Trust Web Site and a video/ CD documentary on Shri Swami Lakshmanjoo Maharaj.

All devotees are requested to participate in the event. for which tickets will also be available with Shri A.K. Ganjoo, President, Delhi Chapter. (Tel. Off.7452894/7247815 Res. 7216507/7435523).

Devotees may also contribute in raising of funds for the event through contribution in the form of sponsorship of the above event, through placement of advertisement in our Souvenir being published for the event or through purchase/selling of tickets. We look forward to wide participation from all members.

Sd/-
Smt. Anjna Dhar
Organiser
Ph. 916387213

ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Head Office :
Ishber Nishat, P. O. Brain,
Srinagar - 190021

Administrative Office:
2, Mohinder Nagar,
Canal Road, Jammu - 180016
Tel. : 555755

Delhi Kendra :
RD- 5, Sarita Vihar,
New Delhi - 110044.
Tel. : 6958308

Ref No. [ATD/ajmc/01

To

Sub : Musical Concert by Sh. Anup Jalota-Call for Sponsorship/ Advertisement etc.

Dear Sir,

Ishwar Ashram Trust is a spiritual and cultural organization managed by some of the most distinguished persons who are the followers of the Swami Lakshmanjoo Raina, a spiritual a leader from Kashmir and the last doyen of Kashmir Shaivism. The Trust has created centers for meditation and learning in Srinagar and Jammu where it organizes lectures, teaching classes, courses as well as social welfare programs. One such center is in an advanced state of completion at Sarita Vihar, New Delhi.

The new center is intended to be the focal point of spiritual and cultural education for all who wish to learn, meditate, and get relief from the stresses of modern life irrespective of caste, creed and colour. The Trust also intends to undertake social work/welfare activities meant for upliftment of the poorer section of society.

To partially meet the cost of further works required in building the above center, the Ishwar Ashram Trust is organizing a performance by Shri Anup Jalota, a maestro in vocal rendering of Bhajans on 1st October 2001 at Siri Fort Auditorium, New Delhi at 6.00 p.m. It is hoped that with the help of your esteemed organization the Ishwar Ashram Trust will be able to create an island of peace and learning within the hustle and bustle of the Metropolis. The trust will welcome your contribution in the form of sponsorship of the above event, through placement of

advertisement in our Souvenir being published for the event or through purchase of tickets for your staff/ client (see enclosed Form). We look forward to any assistance that your organization can provede.

Regards,

Sd/-	*Sd/-*	*Sd/-*
(A. K. Ganju)	*(I.K. Raina)*	*(S.P. Dhar)*
President, Delhi Chapter	*Member, Secretary*	*Trustee*
Ph.: 011 - 7452894	*Ph.: 011-6891136*	*Ph.: 0124 - 6387213*

CONSENT FORM

Yes, we would like to contribute towards the building of the Centre of Learning of Ishwar Ashram Trust in the following way/:

	OPTION	AMOUNT (IN RUPEES)	TICK IN THE SELECTED BOX	NO. OF FREE PASSES
1.	Sponsorship	2.0 Lakh	☐	20
		1.5 Lakh	☐	15
		1.0 Lakh	☐	10
2.	Advertisement In Souvenir (8.5inx11in)			
	Back Cover (Colour)	30 Thousand	☐	5
	Inside Cover (Colour)	20 Thousand	☐	4
	Full Page (Colour)	10 Thousand	☐	2
	Full Page ((B&W))	5 Thousand	☐	2
	Half page (Colour)	5Thousand	☐	2
	Half page (B&W)	3 Thousand	☐	2
3.	Purchase of 10 Tickets for Musical Concert			
		500 each	☐	
		300 each	☐	

Name of Organisation .....

Address .....

.....

.....

Phone No/s .....

Fax No/s .....

Email Address .....

Name of Contact Person .....

Authorised Signature .....

Note : Please enclose DD/PO/Cheque in the name of Ishwar Ashram Trust.
Payable at New Delhi

ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

DELHI ASHRAM : R-5, POCKET 'D', SARITA VIHAR, NEW DELHI

espected Guru Brothers & Sisters,

I am happy to inform you that with the consent of Secretary Trustee h. I.K. Raina, Sh. S.P. Dhar (Trustee) and President Delhi chapter Sh. A.K. anjoo it has been decided to have a website of Ishwar Ashram Trust on internet or the benefit of devotees of Swami Lakshman Joo Maharaj to propagate his acred message.

The proposed website shall have the following features namely introduction f History of Kashmir Shaivism, Swamiji's brief life sketch, publications of the rust Books available on Shaivism, On-line MALINI edition, the only quarterly ournal on Kashmir Shaivism, online subscription, audio, video cassettes vailable, activities of trust, Financial Annual Reports, events/calendar of ctivities, list of members/life members, online new membership, photogallery f Swamiji, spiritual experiences, Swamiji's lectures on meditation, yoga and n being a vegetarian, etc.

The proposed website shall be launched on 1st October, 2001 for the evotees in the proposed program to be held at Siri Fort Auditorium, New Delhi t 6 p.m.

I hereby request all guru brothers & sisters to give in writing their valuable uggestions and also necessary data in the shape of Swamiji's rare photographs, written material, audio/video cassettes etc. The same shall be returned to the concerned within one month. The name of the contributor will be written longwith his contribution on the proposed website.

Yours sincerely

Sd/

Devinder Munshi
Co-ordinator (Website Project)
H. No. 82, Pocket-52 (FF)
Chittranjan Park, New Delhi-19
Tel. : 6451802

ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Head Office :
Ishber Nishat, P. O. Brain,
Srinagar - 190021

Administrative Office:
2, Mohinder Nagar,
Canal Road, Jammu - 180016
Tel. : 555755

Delhi Kendra :
RD- 5, Sarita Vihar,
New Delhi - 110044,
Tel. : 6958308

Jammu, May 9, 2001

I

The General Body of the Ishwar Ashram and some Trust members met today in the Ashram premises to condole the untimely demise of the daughter-in-law of Shri Mohan Lal Wattal (Trustee, I. A. T.) at Srinagar, on 9th of May, 2001. in her prime age.

All the devotees and disciples of Shri Swami Ji Maharaj prayed for the upliftment of her soul. They also felt extremely sorry for the ill-luck fallen on the family.

It was resolved that these sentiments be conveyed to Mr. Wattal and his family with the prayer that Ishwar Swaroop Swami ji Maharaj may shower His choicest blessings on the departed soul and give courage to the family to bear this tragedy.

II

The Trust, the devotees and the disciples of Ishwar Swaroop Swami Lakshman Joo Maharaj, who had assembled in the Ashram for Sunday Pooja on 15th of July 2001 were shocked to learn about the sudden demise of Shri A.N. Dhar.

Immediately after the prayers, they assembled in the meeting (Yajnashala) hall along with some of the Trustees who were present at Jammu, and prayed to Guru Maharaj, to bestow courage to the berieved family and shower bliss to the departed Soul. They remembered how Swamiji Maharaj would occasionally relate as to how much He would feel happy to be with the deceased and his family whenever He would spent some days with them during the period the deceased was posted at Pathankot during his service tenure.

The assembly also desired to convey their feelings to the concerned.

(B.N.Koul, Trustee)

Similar condolence meetings were held at Srinagar Ashram and at Delhi Kendra also.

It started as just a trickle. At first it was a few small localities. Then a few colonies, as Hudco's dream of providing drinking water to all progressed. But the organisation's humble beginnings were not enough to soothe the parched throats of countless Indians. In fact, driven by thirst, people were being forced to drink water that was not fit for consumption. Which meant, Hudco had to do a lot more and of course, faster. New pipelines were laid and advanced technical assistance was sought. Funds were put behind the most sound integrated water management projects and distribution. These projects used rain water harvesting, aquifer recharging and recycling of waste water. However, it was realised that for increased effectiveness, participation of the community and the private sector was crucial. Consequently, several programmes were initiated to involve user and community groups. In short, Hudco dived headlong into solving the problem.

And, soon the movement began to gather force.
It wasn't long before cool, pure, life-giving water began to flow into many thirsty habitations. Hudco is proud to have assisted 320 water supply projects with Hudco loan assistance of Rs. 4,436 crores, for the benefit of our cities and thousands of villages. While our gains have been significant, we realise there's still a long way to go. Today, the effort to install at least one tap in every house continues with unremitting zeal. One thing is certain that **this flow shall never stop.** Not as long as there remain people for whom sipping a glass of pure water remains a luxury.

hudco

The foundation for a stronger India.

Housing and Urban Development Corporation Limited, Hudco Bhawan, India Habitat Centre, Lodhi Road, New Delhi - 110 003.
Tel: 4648193/94/95, 4649610-27, Fax: 4625308. Or visit: www.hudco.org

O&M/160

HUDCO has funded projects worth over Rs 53,815 crores, towards: 125 lac homes, 46 lac sanitation units, 5.2 lac residential plots, 1,837 urban infrastructure projects and 607 building centres (for cost-effective and disaster-resistant technologies).